ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित साहित्यकार

अली सरदार जाफ़री

मेरा सफ़र

मेरा सफ़र

शाइरी का यह मैदान इतना विस्तृत है कि अगर इसमें एक तरफ़ ललित लेखन की क्षमता है, जिस तरह चित्रकला में छोटे-छोटे सूक्ष्म लघुचित्रों की; तो दूसरी तरफ़ बड़े-बड़े कैनवास पर मोटी-मोटी रेखाओं और चमकीले रंगों के सम्मिश्रण से बनाये गये चित्रों की भी है। मैक्सिको की जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष का एक परिणाम यह भी हुआ कि वहाँ के चित्रकारों ने भवनों की दीवारों पर बड़े-बड़े और जनता के क्रान्तिकारी स्वभाव के अनुकूल बहुत ज़ोरदार और जोशीले भित्ति-चित्र बनाने की कला आविष्कार की और अब इसे विश्वव्यापी सर्वप्रियता प्राप्त है। सरदार जाफ़री की बड़ी कविताओं में ऐसी ही बड़ी-दीवारी चित्रकारी का आनन्द है। उनके शब्द स्पष्ट और शक्तिशाली हैं, उनकी लय ऊँची और जोश से भरी हुई है; निश्चित रूप से उनकी शैली उपदेशकों जैसी है, इसलिए कि वे जनसमूह में सुनाने के लिए भी कही गयी हैं। और यह उनका गुण है, अवगुण नहीं। क्या मौलाना रूम की मसनवी का, मीर अनीस के मरसियों का, इक़बाल के शिकवे का, शेक्सपियर के नाटकों का अन्दाज़ उपदेशकों जैसा नहीं है ? ये सब रचनाएँ भी जनसमूह को सुनाने के लिए कही गयी थीं; जाफ़री की लम्बी कविताएँ इसी विधा की हैं, इनमें सरलता, प्रवाह और सत्यता है और वे सुननेवालों पर सीधा प्रभाव डालती हैं और कामयाब हैं।

— सज्जाद ज़हीर

मेरा सफ़र

अली सरदार जाफ़री

भारतीय ज्ञानपीठ

पहला संस्करण : 1998
दूसरा संस्करण : 1999 जुलाई
तीसरा संस्करण : 1999 दिसम्बर

ISBN 81 - 263 - 0703 - X

राष्ट्रभारती
लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक 627

प्रकाशक :
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड
नयी दिल्ली-110 003

मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032

आवरण : सत्यसेवक मुखर्जी

चौथा संस्करण : 2001
मूल्य : 100 रु.

MERA SAFAR
(Urdu Poems)
by Ali Sardar Jafri

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road
New Delhi-110 003

Fourth Edition : 2001
Price : Rs. 100

अली सरदार जाफ़री की शाइरी
एक संकल्प और संघर्ष के युग की पहचान

सृजन के रहस्यमय पहलुओं के बारे में न जाने कितनी बातें कही जाती हैं। अपनी-अपनी अटकल सब ही कुछ-न-कुछ अन्दाज़े लगा कर किसी हद तक इसके गूढ़ रहस्यों तक पहुँच भी जाते हैं। मगर एक अजीबो-ग़रीब पहलू यह है कि कला–विशेष रूप से काव्य और साहित्य में ऐसे सम्बन्धों को उत्कर्ष प्रदान किया जाता है जिसका अन्दाज़ा उन लोगों को भी अक्सर बहुत देर में और ख़ामोश तौर पर होता है जो स्वयं इन सम्बन्धों में परस्पर गुँथे हुए होते हैं। यहाँ यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाती कि शाइर और उसके पढ़ने वाले में फ़ासिला कितना है? देश-काल के सिवा न जाने कितने फ़ासिले हो सकते हैं जो दुनिया के बनाये हुए प्रतिमानों से मापे भी जा सकते हैं। मगर ये सब फ़ासिले कुछ अनजाने तौर पर ग़ायब होकर अवास्तविक भी हो जाते हैं। 'ग़ालिब' व 'मीर' और दूसरी भाषाओं के सभी बड़े कवियों से हमारे कुछ ऐसे ही अटूट सम्बन्ध हैं कि हम उनके अस्तित्व से स्वयं को और अपने अस्तित्व से उनको निकाल नहीं सकते। हम उनके साथ-साथ जीवित रहते हैं और विकसित होते रहते हैं और हर आने वाली पीढ़ी स्वयं ही उनकी नित्यता का कारण और प्रमाण बन जाती है।

इन्हीं कलाकारों में ऐसे भी होते हैं जिनके साथ बाहरी फ़ासिले ख़ुशक़िस्मती से कुछ कम होते हैं। किसी रचनाकार के युग में रहने वाले पाठकों–जो रचनाकार को सुनते हैं, देखते हैं, उसे कभी पसन्द और नापसन्द करते हैं–के सम्बन्धों की एक और दिशा भी होती है। शाइर और उसके श्रोता या पाठक एक-दूसरे पर अपना अधिकार भी समझते हैं और इस अधिकार का जताना महज़ एक भावुकतापूर्ण रवैया नहीं होता। रचनाकार के सृजन और पाठक के साहित्यिक व्यवहार पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। यह अधिकार अपने भीतर अनगिनत अपेक्षाएँ लिये हुए होता है। जिसका आधार वह साहित्यिक अभिरुचि है जिसके निर्माण में परम्पराओं, युगीन व्यवहार-पद्धतियों, चेतना के विविध रूपों, दृष्टिकोणों, सांस्कृतिक मूल्यों, भाषायी विरासत, व्यक्ति के स्वभाव और प्रवृत्तियों–अभिप्राय यह है कि सभी का योग होता है।

सरदार जाफ़री के युग में मुझ-सा व्यक्ति जब उनके बारे में इन अनुभूतियों के साथ लिखने बैठता है तो चेतन और अवचेतन दोनों स्तरों पर अन्दर-अन्दर एक सम्बन्ध सक्रिय रहता है। यहाँ सम्बद्धता व तटस्थता और निर्वैयक्तिक अध्ययन जैसे किताबी नुस्ख़े अप्रासंगिक हो जाते हैं। यों तो हर शाइर के बारे में विभिन्न और अन्तर्विरोधी

रायें होती हैं। मगर सरदार जाफ़री के बारे में परस्पर विरोधी रायें इसलिए लाज़िम हैं कि उनका सर्जनात्मक व्यक्तित्व वैचारिक स्तर पर साम्यवादी आन्दोलन से सम्बद्ध है और इस आन्दोलन से एकमेक हो गया है। इस सम्बद्धता ने उनकी शाइरी और व्यक्तित्व को अगर विवादग्रस्त बना दिया है तो कोई हैरत की बात नहीं। अगर ऐसा न होता तो हैरत की बात होती।

सरदार जाफ़री अब एक युग के प्रतीक बन चुके हैं—एक उत्साहवर्द्धक, कोलाहलपूर्ण और साहसिक युग। जब चन्द आदर्शों के सहारे हम सब जीवित थे और एक शानदार भविष्य के स्वप्न भी देख रहे थे, मैं सातवीं-आठवीं कक्षा का विद्यार्थी था, जब न सिर्फ़ मैं बल्कि मेरी उम्र के बहुत से विद्यार्थियों ने सरदार जाफ़री को पहली बार पढ़ा था। आज यह बहुत दूर की बात लगती है मगर हमने अपने होश में जो हिन्दुस्तान देखा, उसने हमें उसी ज़मीन से बहुत ऊपर उठा दिया था जिसमें रहते हुए आज हम हताश हैं। आज़ादी के संघर्ष के दौरान जिन आदर्शों ने जन्म लिया और जिनके साथ आने वाली पीढ़ियाँ आगे बढ़ीं, वे हमारे समूचे जीवन की धुरी थे। अतएव उस युग के साहित्य में इन आदर्शों से प्रेरित भावों की स्पष्ट रूप से केन्द्रीय स्थिति रही है।

हमारे देश के कोने-कोने में उन दिनों यह उत्साह और उमंग मिलती थी। जामिया मिल्लिया इस्लामिया के वातावरण में, जहाँ मैं विद्यार्थी था, इसकी स्थापना के ज़माने से विद्रोह भड़क रहा था। मैं 1941 ई. में लगभग सात साल की उम्र में जब यहाँ दाख़िल हुआ तो यहाँ सबक़ ही देश-प्रेम और साम्राज्यविरोध का मिला। हर रोज़ सुबह-सुबह स्कूल में क्लास जाने से पहले सभी विद्यार्थियों की सभा में हमारी शिक्षा का आरम्भ इक़बाल की नज़्मों और आज़ादी से सम्बन्धित दूसरे शाइरों की ओजपूर्ण रचनाओं से होता। 'जोश', 'मजाज़', 'मख़्दूम' और उस समय के बहुत से शाइरों के तराने हमने यहीं पहली बार सुने जिनका संगीत आज तक हमारी स्मृतियों में गूँज रहा है। उस सुबह की सभा में—जिसे हम सब 'तराना' कहते थे—गाँधी, नेहरू, आज़ाद के भाषणों के अंश सुनाये जाते थे। गाँधी जी के उपवास और सत्याग्रह, नेताओं के कारावास की ख़बरें, हुक्मरानों की गोलाबारी, लाठी-चार्ज और आज़ादी से सूरमाओं की दिलेरी के क़िस्से सुनाये जाते थे। ख़ुद जामिया के महत्त्वपूर्ण सदस्य आज़ादी की लड़ाई में पूरे तौर पर शामिल थे और विद्यार्थियों के सामने अपने विचारों को निस्संकोच रूप से व्यक्त करते थे। मेरे पिता इस समूचे परिदृश्य में शामिल थे। लिहाज़ा स्कूल से घर तक एक ही सिलसिला था। जामिया की डिग्रियाँ कहीं मान्य नहीं थीं। जामिया में शिक्षा-प्राप्त लोग सरकारी नौकरी के पात्र नहीं समझे जाते थे। अतएव सिखाया यही जाता था कि सरकारी नौकरी से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण आत्मस्वाभिमान और स्वाधीनता प्राप्ति है। इस वातावरण में आँख खुली तो हम यही सब-कुछ अपने इर्द-गिर्द देखना भी चाहते थे। यह सबक़ हमारी रग-रग में ऐसे समा गया कि हमारे लिए विद्रोह और प्रतिरोध के नारे एक जादुई कैफ़ियत रखते थे। जामिया से इक़बाल, प्रेमचन्द और उस युग के बड़े व्यक्तित्वों का सम्बन्ध तो पहले ही था, उनके बाद प्रगतिशीलों में सरदार

जाफ़री, कृश्न चन्दर और राजेन्दर सिंह बेदी भी जामिया के उर्दू पाठ्यक्रम में शामिल हो गये थे। इन लोगों को हमने सिर्फ़ पढ़ा ही नहीं, आये दिन जामिया की महफ़िलों में आते-जाते और अपनी रचनाएँ सुनाते और बहस करते देखा और सुना।

'ख़ून की लकीर' प्रकाशित हुई तो मैंने इस पर समीक्षा लिखी और जामिया के प्रगतिशील लेखक संघ के जलसे में पेश किया। जामिया में बुजुर्गों के सामने अपने विचारों की बेबाक अभिव्यक्ति पर पाबन्दी नहीं थी। बल्कि उस्ताद मत-भिन्नता के बावजूद उत्साहवर्द्धन करते थे। ज़ाहिर है इस उम्र में मेरा यह लेख बचकाना ही था। याद आता है कि मैंने सरदार जाफ़री के आगे 'जोश' को भी बेहैसियत क़रार दिया था कि वे सरकारी कर्मचारी थे और इसे हम शाइर-ए-इन्क़िलाब की गरिमा के विरुद्ध समझते थे। फिर बहुत दिन बाद हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की जंग के बाद जब सरदार जाफ़री की किताब 'पैराहन-ए-शरर' सामने आयी तो मैंने उनकी देशभक्ति को राजनीतिक विचलन की संज्ञा देकर सरदार जाफ़री की सारी शाइरी को ही तहस-नहस कर दिया। राजनीतिक दृष्टि से आज भी मेरी राय में तब्दीली नहीं हुई लेकिन 'पैराहन- ए-शरर' के साथ उस समय यह पूरा न्याय नहीं था। प्रगतिशीलता के कारण और फिर खुद सरदार जाफ़री ने विषय-वस्तु एवं रूप की बहस में विषय-वस्तु को अलग करके उसके महत्त्व को लेकर इस तरह आग्रह किया था कि हम जैसे अनाड़ी ऐसी धृष्टताएँ कर लिया करते थे जिसकी आज हिम्मत नहीं होती। मगर यह भी हमारे शाइर पर हमारा अधिकार था।

नौजवानों के दिल की धड़कनें हों, शाइर की आवाज़ हो, रहनुमाओं के भाषण हों, आम बहसें और चर्चाएँ हों, जलसों और जुलूसों के शोर हों—सब-कुछ गोलियों की सनसनाहट, नक्क़ारों की गूँज और नारों के उछाह से एकमेक था। इसमें सन्देह नहीं कि हर युग में अनगिनत आवाज़ें वातावरण में विद्यमान रहती हैं लेकिन स्पष्ट आवाज़ वही होती है जिसमें हर स्तर पर लोगों के भावों की ऊष्मा भी समाहित हो। निश्चय ही इतिहास में ऐसे दौर भी आते हैं जब कानाफ़ूसी करना, संकेतों में बातें करना भी आवश्यक हो जाता है। ये सब चीज़ें मिलकर ऐसे लहजों और स्वरों को उभार कर सामने लाती हैं जो समय के आग्रहों के अनुरूप होते हैं। ख़ामोशी भी बोलती हुई और गूँजती हुई कोई-न-कोई सन्देश दूर तक पहुँचाती है। साहित्य ऐसे ही लहजों और स्वरों से आकार लेता है जो किसी समय के सामान्य वातावरण में उपजते हैं। उर्दू साहित्य के विभिन्न युगों का सृजन इन स्वरों का प्रतिनिधित्व करता है। शहर आशोब[1] और हज्व[2] से लेकर ग़ज़ल तक हर युग में इस वास्तविकता को बयान करती रही है। मगर उस ज़माने में आवाज़ें और ही थीं।

साहित्य को देखने के कई कोण हो सकते हैं। इसमें रुचि रखने वाले अलग-अलग ढंग से आनन्दित होते हैं और आनन्दित होने का कारण बता सकते हैं।

---

1. उर्दू नज़्म की एक क़िस्म, जिसमें अपने समय के जनजीवन की दुरवस्था और शासन की क्रूरताओं का चित्रण किया जाता है, 2. निन्दापरक कविता जिसमें हास्य-व्यंग्य का पुट होता है।

आलोचना के मानदण्डों पर परख कर इन विचारों को चाहे जिस ख़ाने में रखें लेकिन साहित्य से आनन्दित होनेवालों की अनुभूति का बहरहाल बुनियादी महत्त्व होता है। शाइर और उसके पढ़ने और सुनने वाले चाहे कितने भी समीप या दूर हों; अगर समकालीन हैं तो उनके अनुभव और चेतना के स्रोतों में बहुत-कुछ साझा होना एक स्वाभाविक बात है। दोनों एक ही युग, एक ही संस्कृति से सम्बन्ध रखते हुए भी अभिरुचि, स्वभाव, परिवेश, ज्ञान एवं बोध की दृष्टि से अलग-अलग धरातलों पर होते हैं; इनके बीच कई धरातलों पर जुड़ाव भी हो सकता है। अतएव सरदार जाफ़री से मेरा और इस सदी की तीसरी-चौथी दहाई में होश सँभालने वाले बहुत-से लोगों का सम्बन्ध उनकी शाइरी के माध्यम से इसी वातावरण में जुड़ा जिसने हमें समान आदर्श, समान सपनों और समान आकांक्षाओं के एक सूत्र में बाँध दिया।

उर्दू कल्चर में पले-बढ़े वे सब लोग जिनमें शाइरी और साहित्य का संस्कार है, होश सँभालते ही अपने माहौल में क्लासिकी उस्तादों की आवाज़ की अनुगूँज पर मुग्ध हो जाते हैं। बल्कि यह कहना भी ग़लत न होगा कि होश सँभालने से पहले बुज़ुर्गों की तरफ़ से इसकी कोशिश होती है कि बच्चे का शीन-क़ाफ़[1] दुरुस्त हो, शब्द, मुहावरे और प्रतीकों के प्रयोग और पहचान का विवेक धीरे-धीरे जाग्रत हो। सभा के शिष्टाचार और सम्भाषण-कला सीखने के लिए महफ़िलों में बिठाया जाना, तुतलाने की उम्र से उर्दू और फ़ारसी के अच्छे शे'र याद कराना, बेतबाज़ी[2] वग़ैरह के ज़रिए काव्य-रचना की परम्पराओं—जैसे बह्र,[3] वज़्न, रदीफ़-क़ाफ़िया और तल्मीहात[4]—से परिचित कराना, यह सब उस समाज का अनिवार्य अंग था। सर्जनात्मक रुझान रखने वाले उस माहौल से पूरा लाभ उठाते थे और उन्हें बहुत कम उम्र में शे'र कहने का चस्का लग जाता था।

सरदार जाफ़री इसी माहौल में पले-बढ़े। अतएव काव्याभिरुचि की शिक्षा और काव्य-रचना की परम्पराओं से एक स्वाभाविक वातावरण में परिचय ने उनके सर्जनात्मक स्वभाव को समृद्ध किया। स्कूल जाने से पहले ही शे'र कहने की अभिरुचि विकसित हो गयी और फिर कॉलेज व यूनिवर्सिटी की शिक्षा के दौरान अँग्रेज़ी भाषा एवं साहित्य और अन्य अनुशासनों के अध्ययन ने उनके सोच को नयी दिशा की ओर उन्मुख किया। लखनऊ, दिल्ली और अलीगढ़ के वातावरण में राजनीतिक आन्दोलन से दिलचस्पी ने शाइर के व्यक्तित्व में एक उत्साही राजनीतिक कार्यकर्ता को जगा दिया जिसने अपने युग की व्यवस्था के प्रति अस्वीकार और प्रतिरोध के साथ-साथ एक सन्तुलित जीवन-दृष्टि को उनके सृजन की धुरी बना दिया।

सरदार जाफ़री उर्दू की समूची परम्परा को आत्मसात् करते हुए भी 'अनीस', 'इक़बाल' और 'जोश' से ख़ास तौर पर प्रभावित होनेवाला मिज़ाज लेकर आये थे।

---

1. उच्चारण, 2. अन्त्याक्षरी, 3. छन्द 4. अन्तःकथाएँ, इतिहास सम्बन्धी संकेत।

समय की गति, उनकी वैचारिक उपज और व्यावहारिक सक्रियताओं ने इसे और समृद्ध किया। इन शाइरों से उनकी स्वाभाविक संगति का कारण यह था कि इन लोगों ने जिस आदर्श जीवन का स्वप्न देखा था, उससे सिर्फ़ अपनी आँखों को रौशन रखने के बजाय दूसरों को इसमें शरीक करने के लिए शाइरी को एक माध्यम बनाया था। 'अनीस', 'इक़बाल' और 'जोश' के सपने अलग-अलग ज़रूर थे मगर उन्हें अपनी-अपनी कल्पना की दुनिया पर इतना विश्वास था कि वे अपनी इस अभिलाषा को 'स्व' की परिधि में सीमित नहीं रख सकते थे। उनकी शाइरी सन्देश और लोक-जागरण की शाइरी थी। सरदार जाफ़री जैसा शाइर जो संकेतों में बात करने वाला शाइर नहीं था, वह इन शाइरों से विशेष जुड़ाव क़ायम किये बग़ैर कैसे रह सकता था? अपने अन्दर ही अन्दर घुलने और दिल ही दिल में पछताने के बजाय भावों की उदात्तता, अभिव्यक्ति की सहजता और जन सामान्य को उद्बुद्ध करने वाली लय—जोकि उस युग की माँग थी—सरदार जाफ़री को रास आयी। हमें याद है कि हज़ारों के मजमे में सरदार जाफ़री की आवाज़ एक स्फूर्ति और उमंग पैदा कर देती थी। मुशायरों में उनकी आज़ाद नज़्में भी अजीब जादू जगाती थीं। जिस माहौल में ग़ज़ल की गेयता और सांकेतिकता 'जिगर' जैसे स्वरसाधक के संगीत में ढल कर हर तरफ़ छा जाती थी, उसमें सरदार जाफ़री का ऊँचा स्वर और बिना गाये रचना-पाठ करने का ढंग न सिर्फ़ लोकप्रिय हो गया बल्कि आज़ाद और रदीफ़-क़ाफ़िया रहित नज़्म को अगर स्वीकार कर लिया गया तो इसमें सरदार जाफ़री और कैफ़ी आज़मी जैसे शाइरों का बड़ा हाथ था। उर्दू की साहित्यिक संस्कृति में यह मामूली योगदान नहीं था। ग़ज़ल तो हमेशा से हावी रही थी, फिर 'जोश' का बिना गाये पढ़ने का ढंग भी बहुत मनभावन था लेकिन वह छन्दोबद्ध नज़्मों के साथ जुड़ा हुआ था। इस माहौल में आज़ाद और रदीफ़-क़ाफ़िया रहित नज़्म को उर्दू के सुरुचिसम्पन श्रोताओं के लिए ग्राह्य बनाना और इस हद तक लोकप्रिय बनाना कि वह उस युग का एक प्रिय स्वर बन जाए; उर्दू संस्कृति की एक नयी प्रवृत्ति थी जिसे सरदार जाफ़री और प्रगतिशील शाइरों की बदौलत हमेशा के लिए एक जगह मिल गयी। मुशायरों और अवामी जलसों का स्वाधीनता संघर्ष के ज़माने में बहुत अहम रौल था जिससे प्रगतिशीलों ने पूरा-पूरा फ़ायदा उठाया कि वैचारिक और प्रतिरोधात्मक शाइरी करने वालों का एक अहम मक्सद व्यापक जनसमूह तक अपनी पहुँच बनाना था। आज़ाद और रदीफ़-क़ाफ़िया से मुक्त नज़्म की लोकप्रियता को इन्हीं मुशायरों और जलसों ने बढ़ाया।

अपनी विचारधारात्मक प्रतिबद्धता के साथ सक्रिय रहने वाले शाइरों के जीवन और व्यक्तित्व की भाँति उनकी शाइरी में भी उतार-चढ़ाव का होना अपेक्षित है। आज़ादी की लड़ाई हो या साम्यवाद की राह, आशा और विश्वास को अपने भीतर सँजोये हुए भी इन पर चलनेवाले लोग असफलताओं और पराजयों का सामना करते रहते हैं। सरदार जाफ़री की शाइरी में ये उतार-चढ़ाव नज़र आते हैं, मगर वे कभी

किसी सपने के टूटने पर आत्मकेन्द्रित होकर अदृश्य नहीं हो जाते बल्कि इसे संघर्ष का एक अनिवार्य सोपान समझते हैं जिसकी पराकाष्ठा सफलता है। यह आशावाद उनके यहाँ प्रबल है। इसकी बहुत अच्छी अभिव्यक्ति उनकी नज़्म 'पत्थर की दीवार' है। नज़्म का अन्त सरदार जाफ़री की काव्य-शैली का एक सुन्दर उदाहरण है :

तीरगी[1] के बादल से
जुगनुओं की बारिश है
रक़्स[2] में शरारे[3] हैं
हर तरफ़ अँधेरा है
और इस अँधेरे में
हर तरफ़ शरारे हैं
कोई कह नहीं सकता
कौन-सा शरारा कब
बेक़रार हो जाए
शो'ला बार[4] हो जाए
इन्क़िलाब आ जाए

मगर सरदार जाफ़री के बारे में यह समझना कि वे महज़ राजनीतिक जीवन से सम्बद्ध रोज़मर्रा की समस्याओं के शाइर हैं, सही नहीं। साम्यवादी दृष्टिकोण सिर्फ़ राजनीतिक दृष्टिकोण नहीं बल्कि समूचे जीवन और मानवीय इतिहास पर हावी है। इस दृष्टि से उनकी बहुत-सी नज़्मों में सबसे ज़्यादा मुखर 'मेरा सफ़र' है जो निश्चय ही इस ज़माने की उर्दू की बेहतरीन नज़्मों में शुमार की जाएगी। नज़्म की पूरी बनावट, उसकी प्रत्येक पंक्ति और नज़्म ख़त्म होने के बाद उसके समग्र प्रभाव से सरदार जाफ़री की असाधारण कला का पता चलता है। वे प्रेम करते हैं, सौन्दर्य के जिज्ञासु हैं और उस पर मनःप्राण से न्यौछावर हो जाते हैं मगर उनके भीतर एक संवेदनशील, करुणावान और हर स्थिति में एक स्वाभाविक व मानवीय आचरण करने वाला इन्सान है, जो कभी जेल के एकान्त में जागती आँखों के साथ अपने बच्चे की नींद में शामिल होकर उसके साथ सपने देखता है। कभी अपनी माँ के दूध के शहद व ओस कणों में अपनी भाषा की सुगन्ध और वाणी के चमत्कार का झरना फूटते हुए देखता है और कभी ख़ुद सरदार व सुल्ताना दुनिया के सारे प्रेम करने वालों का प्रतीक बन जाते हैं। उर्दू शाइरी में यह बिल्कुल नयी आवाज़ है जहाँ शे'रियत (काव्यात्मकता) और विचारधारात्मक प्रतिबद्धता को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता।

सौन्दर्य ऋतुओं का हो या दृश्यों का, अवध की मनोरम धरती का हो या मुम्बई की सजीली सड़कों का या जेल की एकाकी शामों का—यह सब-कुछ जिस तीव्रता के

---

1. अन्धकार, 2. नृत्य, 3. चिनगारी, 4. अंगारे बरसाना।

साथ उन्हें प्रभावित करता है, इसकी अभिव्यक्ति उस दुर्लभ बिम्ब-विधान में हुई है जो उनकी रचनाओं में जगह-जगह दृष्टिगत होता है। यह बिम्ब-विधान उनकी सहज कथन-भंगिमा और उद्‌बोधन शैली में जो रंग भरता है, उससे उनकी आवाज़ में और निखार पैदा हो जाता है। सौन्दर्य उनकी आँखों का रंगीन पर्दा बनकर उनकी निगाह को रोकता नहीं है, न वह उन्हें किसी सपनों की वादी में ले जाकर खो देता है बल्कि इसकी बदौलत जीवन और जगत् के प्रति प्रेम, आशा और विश्वास का मार्ग और अधिक आलोकित हो जाता है। प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति उसके मन में विशेष आकर्षण है। उनकी जीवन्त और व्यापक संवेदना स्वयं उनके व्यक्तित्व को इन दृश्यों से एकाकार कर देती है। वे स्वयं को प्रकृति के रहस्यमय और रमणीय रूपों से अलग नहीं पाते। अतएव 'मेरा सफ़र' के अलावा उनकी हाल की नज़्मों में आत्मकथात्मक नज़्म 'नवम्बर मेरा गहवारा' और 'आबला-पा' में उनकी कला एक ऐसे बिन्दु पर पहुँचती है जहाँ वे अद्वितीय चित्र-शृंखला उभारने लगते हैं :

मुझे सूरज ने पाला
चाँदनी की किरनों ने नहलाया
हर इक शै मुझसे थी मानूस[1]
मुझसे बात करती थी
दरख़्तों की ज़बान
चिड़ियों के नग़मे मैं समझता था
हवा में तितलियाँ परवाज़[2] करती थीं
मैं उनके साथ उड़ता था
मिरी मुट्‌ठी में जुगनू जगमगाते थे
मैं परियों के परिस्तानों में जाता था

और फिर आगे चलकर इस नज़्म में कहते हैं :

मैं खुद फ़ितरत[3] था, फ़ितरत मिरी हस्ती थी
इसी फ़ितरत ने मिरे ख़ूँ में लाखों बिजलियाँ भर दीं
मसें भीगीं, रगो-पे[4] में जुनूँ[5] का बाँकपन आया
मिरे आगे नये रंगों में दुनिया का चमन आया
हर इक शम्शादे-पैकर[6] लेके फ़िर्दौसे-चमन[7] आया

दुनिया की विभिन्न भाषाओं में हमें ऐसे रज़्मिए[8] मिलते हैं जो विश्वसाहित्य में

---

1. प्रेम करने वाला, 2. उड़ान, 3. प्रकृति, 4. स्नायु, 5. उन्माद, 6. सर्व का पेड़ जिससे प्रेमिका की देह की उपमा दी जाती है; 7. उपवन का स्वर्ग, 8. वह कविता जिसमें युद्ध का वर्णन किया गया हो, वीरगाथा।

यादगार हो गये हैं। वे इतिहास के किसी न किसी महत्त्वपूर्ण अध्याय की याद दिलाते हैं। उर्दू में ऐसी तो बहुत-सी नज़्में हैं जिनसे स्वाधीनता के संघर्ष का युद्ध-वृत्तान्त क्रमबद्ध किया जा सकता है मगर ऐसा कोई बड़ा रज़्मिया, जिसे स्वाधीनता के संघर्ष का निशान कहा जा सके, न सिर्फ़ उर्दू बल्कि शायद हमारी किसी भी भाषा की कविता न दे सकी। मगर इसके बावजूद उर्दू में रज़्मिए के सुन्दर और सार्थक तत्त्व बिखरे हुए ज़रूर नज़र आते हैं। हमारे यहाँ आज़ादी की नज़्मों का भण्डार ख़ुद अपनी जगह साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण है कि आधुनिक साहित्य का इतिहास इसके बग़ैर मुकम्मल नहीं हो सकता। दरअसल प्रगतिशील आन्दोलन इसी युग का प्रतीक है और सरदार जाफ़री की शाइरी के बग़ैर इस इतिहास को मुकम्मल नहीं कहा जा सकता। इस सिलसिले में उनकी नज़्म 'नयी दुनिया को सलाम' इस युग के शे'री सरमाये में एक ख़ास मुक़ाम रखती है। ऐसी कोई दूसरी मिसाल उस ज़माने में हमें नहीं मिलती। यहाँ 'नयी दुनिया' स्वयं एक आदर्श जीवन का प्रतीक है। इसमें मरियम और जावेद के चरित्र इस युग के सामान्य जन का प्रतिनिधित्व करते हैं मगर वे जिन मंज़िलों से गुज़रते हैं वही उन्हें आदर्श चरित्र का रूप देती हैं। एक आदर्श दुनिया का सपना देखने वाले ये पात्र अपनी तमामतर रूमानियत के बावजूद उस रूमानियत से आज़ाद हैं जो पारम्परिक उर्दू शाइरी में इससे पहले पायी जाती थी। यहाँ स्त्री सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति और प्रेयसी होने के साथ-साथ अपनी कोख में एक बच्चे को पाल भी रही है जो नयी दुनिया के नये आदर्शों का प्रतीक है और एक रूपक-चरित्र की तमाम विशेषताएँ लिये हुए है। यह उसी सामाजिक और क्रान्तिकारी चेतना की देन है जो प्रगतिशीलता की बदौलत अस्तित्व में आयी। प्रगतिशीलता पर हज़ार टीका-टिप्पणियों के बावजूद उसकी यह उपलब्धि कम नहीं कि उसने साहित्य की रूढ़ नैतिकता को बदल दिया। हमारी शाइरी की प्रचलित तल्मीहात को नयी अर्थवत्ता प्रदान की। अगर गद्य में 'अंगारे', 'टेढ़ी लकीर' और मण्टो व बेदी की बहुत-सी रचनाएँ इस नयी कल्पना को साकार करती हैं तो प्रगतिशील शाइरों की रचनाओं में 'नयी दुनिया को सलाम' एक नये वैचारिक परिप्रेक्ष्य की ओर संकेत करती है। अपने विस्तृत कैनवस, तकनीक और काव्यगत विशेषताओं की दृष्टि से भी 'नयी दुनिया को सलाम' एक विशिष्ट हैसियत रखती है।

समग्र रूप से सरदार जाफ़री की समूची सर्जनात्मक यात्रा पर नज़र डाली जाय तो हम देखते हैं कि 1944 ई. में 'परवाज़' के प्रकाशन से जो सिलसिला शुरू हुआ था, वह हिन्दुस्तान में साम्यवादी आन्दोलन के उतार-चढ़ाव से गुज़रता हुआ और साथ ही साथ उनके व्यक्तित्व को विस्तार देता हुआ एक ऐसी मंज़िल पर पहुँचा है, जहाँ न तो वह पुरानी घनगरज है, न साम्यवादी मताग्रह जो 'अम्न का सितारा' और 'स्तालिन कथा' में तात्कालिक राजनीति और आन्दोलनधर्मिता के रूप में व्यक्त हुआ था। आज सरदार जाफ़री की शाइरी सूफ़ियाना इन्सान दोस्ती से ज़्यादा क़रीब है।

मगर संकल्प और संघर्ष के उस महान् युग की पाली हुई खनक आज भी उनके यहाँ बाक़ी है। अपनी उम्र में उन्होंने आज़ादी के सपने भी देखे और उन सपनों को टूटते हुए भी पाया। साम्यवादी क्रान्ति की आकांक्षा के साथ सोवियत यूनियन का उत्थान-पतन भी देखा, हिन्दुस्तान के साहित्यिक परिदृश्य पर प्रगतिशील आन्दोलन का वर्चस्व देखा, और फिर विचारधारात्मक बिखराव के साथ उसका वह ज़ोर भी टूटता देखा। यह यात्रा आज भी जारी है, मगर एक नये बोध, नयी आस्था के साथ जिसके विकास में अतीत की सारी सफलताओं और पराजयों की मर्मान्तक अनुभूति भी शामिल है और अपनी सपने देखने वाली आँखों का भरोसा भी—

किससे मुमकिन है तमन्नाओं के ज़ख़्मों का हिसाब
आस्तीनों को पुकारेंगे कहाँ तक—आँसू
अब तो दामन को पकड़ते हैं लहू के गिर्दाब[1]
देखती फिरती है एक-एक मुँह ख़ामोशी
जाने क्या बात है शर्मिन्दा है अन्दाज़-ए-ख़िताब[2]
दर-ब-दर ठोकरें खाते हुए फिरते हैं सवाल
और मुजरिम की तरह उनसे गुरेज़ाँ[3] हैं जवाब
सरकशी[4] फिर मैं तुझे आज सदा देता हूँ
मैं तिरा शाइर-ए-आवारा-ओ-बेबाक-ओ-ख़राब
फैंक फिर जज़्ब-ए-बेताब[5] की आलम पे कमन्द[6]
एक ख़्वाब और भी ऐ हिम्मत-ए-दुश्वार पसन्द

—सिद्दीक़ुर्रहमान क़िदवाई
(मूल उर्दू से अनुवाद : जानकीप्रसाद शर्मा)

---

1. भँवर, 2. सम्बोधन का ढंग, 3. विमुख, दूर भागते हुए, 4. उद्दण्डता, 5. व्यग्र भाव, 6. जाल, पाश।

सिलसिला

खण्ड : एक

खण्ड : दो

खण्ड : एक

1947-77 की अवधि की कविताएँ

तरान-ए-उर्दू

हमारी प्यारी ज़बान उर्दू
हमारे नग़मों की जान उर्दू
हसीन दिलकश जवान उर्दू
यह वह ज़बाँ है कि जिसको गंगा के जल से पाकीज़गी मिली है
अवध की ठण्डी हवा के झोंकों में जिसके दिल की कली खिली है
जो शे'रो-नग़मा के ख़ुल्दज़ारों में आज कोयल-सी कूकती है
हमारी प्यारी ज़बान उर्दू
हमारे नग़मों की जान उर्दू
हसीन दिलकश जवान उर्दू
इसी ज़बाँ में हमारे बचपन ने माँओं से लोरियाँ सुनी हैं
जवान होकर इसी ज़बाँ में कहानियाँ इश्क़ ने कही हैं
इसी ज़बाँ के चमकते हीरों से इल्म की झोलियाँ भरी हैं
हमारी प्यारी ज़बान उर्दू
हमारे नग़मों की जान उर्दू
हसीन दिलकश जवान उर्दू
यह वह ज़बाँ है कि जिसने ज़िन्दाँ की तीरगी में दिये जलाये
यह वह ज़बाँ है कि जिसके शो'लों से जल गये फाँसियों के साये
फ़राज़े-दारो-रसन[1] से भी हमने सरफ़रोशी के गीत गाये
हमारी प्यारी ज़बान उर्दू
हमारे नग़मों की जान उर्दू
हसीन दिलकश जवान उर्दू
चले हैं गंगो-जमन की वादी से हम हवाए-बहार बनकर
हिमालया से उतर रहे हैं तरान-ए-आबशार[2] बनकर
रवाँ हैं हिन्दोस्ताँ की रग-रग में ख़ून की सुर्ख़ धार बनकर
हमारी प्यारी ज़बान उर्दू
हमारे नग़मों की जान उर्दू
हसीन दिलकश जवान उर्दू

---

1. सूली की रस्सी की ऊँचाई, 2. झरना।

हाथों का तराना

इन हाथों की ताज़ीम[1] करो
इन हाथों की तकरीम[2] करो
दुनिया को चलाने वाले हैं
इन हाथों को तस्लीम[3] करो

तारीख़ के और मशीनों के पहियों की रवानी इनसे है
तहज़ीब की और तमद्दुन की भरपूर जवानी इनसे है
दुनिया का फ़साना इनसे है, इन्साँ की कहानी इनसे है
इन हाथों की ताज़ीम करो

सदियों से गुज़र कर आये हैं, ये नेक और बद को जानते हैं
ये दोस्त हैं सारे आलम के, पर दुश्मन को पहचानते हैं
ख़ुद शक्ति का अवतार हैं ये, कब ग़ैर की शक्ति मानते हैं
इन हाथों की ताज़ीम करो

हैं ज़ख़्म हमारे हाथों के, ये फूल जो हैं गुलदानों में
सूखे हुए प्यासे चुल्लू थे, जो जाम हैं अब मयख़ानों में
टूटी हुई सौ अँगड़ाइयों की मेहराबें हैं ऐवानों[4] में
इन हाथों की ताज़ीम करो

राहों की सुनहरी रौशनियाँ, बिजली के जो फैले दामन हैं
फ़ानूस हसीं ऐवानों के, जो रंग और नूर के ख़िरमन हैं
ये हाथ हमारे जलते हैं, यह हाथ हमारे रौशन हैं
इन हाथों की ताज़ीम करो

ख़ामोश हैं ये, ख़ामोशी से, सौ बर्बत-ओ-चंग[5] बनाते हैं
तारों में राग सुलाते हैं, तबलों में बोल छुपाते हैं।

---

1. सम्मान, 2. आदर-सत्कार, 3. स्वीकार, 4. महलों में, 5. एक तरह का बाजा।

जब साज़ में जुम्बिश होती है, तब हाथ हमारे गाते हैं
इन हाथों की ताज़ीम करो

एजाज़ है ये इन हाथों का, रेशम को छुएँ तो आँचल है
पत्थर को छुएँ तो बुत कर दें, कालिक को छुएँ तो काजल है
मिट्टी को छुएँ तो सोना है, चाँदी को छुएँ तो पायल है
इन हाथों की ताज़ीम करो

बहती हुई बिजली की लहरें, सिमटे हुए गंगा के धारे
धरती के मुक़द्दर के मालिक, मेहनत के उफ़ुक़ के सय्यारे[1]
यह चारागराने-दर्दे-जहाँ, सदियों से मगर ख़ुद बेचारे
इन हाथों की ताज़ीम करो

तख़लीक़[2] यह सोज़े-मेहनत की, और फ़ितरत के शहकार भी हैं
मैदाने-अमल में लेकिन ख़ुद, ये ख़ालिक़ भी मे'मार भी हैं
फूलों से भरे ये शाख़ भी हैं और चलती हुई तलवार भी हैं
इन हाथों की ताज़ीम करो

ये हाथ न हों तो मुहमल[3] सब, तहरीरें और तक़रीरें हैं
ये हाथ न हों तो बेमानी, इन्सानों की तक़दीरें हैं
सब हिकमतो-दानिश, इल्मो-हुनर, इन हाथों की तफ़सीरें हैं
इन हाथों की ताज़ीम करो

ये कितने सबुक और नाज़ुक हैं, ये कितने सुडौल और अच्छे हैं
चालाकी में उस्ताद हैं ये, और भोलेपन में बच्चे हैं
इस झूठ की गन्दी दुनिया में, बस हाथ हमारे सच्चे हैं
इन हाथों की ताज़ीम करो

यह सरहद-सरहद जुड़ते हैं और मुल्कों-मुल्कों जाते हैं
बाँहों में बाँहें डालते हैं और दिल को दिल से मिलाते हैं
फिर ज़ुल्मो-सितम के पैरों की ज़ंजीरे-गराँ[4] बन जाते हैं
इन हाथों की ताज़ीम करो

---

1. क्षितिज पर घूमने वाले तारे, 2. सृष्टि, 3. अर्थहीन, 4. भारी ज़ंजीरें।

तामीर तो इनकी फ़ितरत है, इक और नयी तामीर सही
इक और नयी तदबीर सही, इक और नयी तक़दीर सही
इक शोख़ो-हसीं ख़्वाब और सही, इक शोख़ो-हसीं ताबीर सही

इन हाथों की ताज़ीम करो
इन हाथों की तक़रीम करो
दुनिया को चलाने वाले हैं
इन हाथों को तस्लीम करो

एशिया जाग उठा

यह एशिया की ज़मीं, तमद्दुन की कोख, तहज़ीब का वतन है
यहीं पे सूरज ने आँख खोली
यहीं पे इन्सानियत की पहली सहर ने रूख़ से नक़ाब उलटी
यहीं से अगले युगों की शमूओं ने इल्म-ओ-हिकमत का नूर पाया
इसी बलन्दी से वेद ने ज़मज़मे सुनाये
यहीं से गौतम ने आदमी की समानता का सबक़ पढ़ाया
हमारी तारीख़ की हवाएँ मसीह के बोल सुन चुकी हैं
हमारा सूरज मुहम्मदे-मुस्तफ़ा के सर पर चमक चुका है
और अब हमारे क़दीम आकाश के सितारे
क़दीम आँखों से एशिया की नयी जवानी को देखते हैं

यह ख़ाक वह ख़ाक है कि जिसने
सुनहरे गेहूँ के मोतियों को जनम दिया है
यह ख़ाक इतनी क़दीम जितनी क़दीम इन्साँ की दास्तानें
अज़ीम इतनी अज़ीम जितनी हिमालया की बलन्दियाँ हैं
हसीन इतनी हसीन जितनी हसीं अजन्ता की अप्सराएँ
यह अपनी फ़ैयाज़ियों[1] में दरयाए-नील-ओ-गंगा से कम नहीं है
यह गोद बच्चों से और फूलों से और फलों से भरी हुई है।

हमारा विरसा मोहनजोदाड़ो से लेके दीवारे-चीन तक है
हमारी तारीख़ ताज और सीकरी से अहरामे-मिस्र तक है
हमें रिवायात के ख़ज़ानों से बाविलो-नीनवा मिले हैं
फ़साहतों[2] ने हमारे बचपन के होंट चूमे
बलाग़तों[3] ने बड़ी हसीं लोरियाँ सुनायीं
ज़बान खोली तो वेद, इंजील और क़ुरआन बन के बोले
हमारी तख़ईल[4] आसमानों की उस बलन्दी को छू चुकी है

---

1. दानशीलता, 2. औचित्य, 3. प्रसंगानुकूल बात, 4. कल्पनाशक्ति।

जहाँ से फ़िरदौसी और सा'दी
निज़ामी, ख़ैयाम और हाफ़िज़ के चाँद सूरज चमक रहे हैं
बलन्दियाँ जिन पे वाल्मीक और पाक तुलसी
कबीर और सूर हुक्मराँ हैं
उन्हीं फ़ज़ाओं की बिजलियाँ हैं
जो साज़े-इक़बाल और टैगोर के तरानों में गूँजती हैं

2

गुज़र चुके हैं हमारे सर से
हज़ारों सालों के तुन्द[1] तूफ़ाँ
मुसीबतों की हवाएँ, जुल्मो-सितम की आँधी
मगर यह अनमोल ख़ाक फिर भी हसीन फिर भी जवाँ रही है
हमारे रुस्तम हमारे अर्जुन मरे नहीं हैं
वह जंगलों और पहाड़ियों में ज़मीन पर काश्त कर रहे हैं
हमारे फ़रहाद अब भी तीशे चला रहे हैं
जवान लैला, हसीन शीरीं, कुँवारी हीर अब भी गा रही है
शकुन्तलाएँ घनेरे पेड़ों के सब्ज़ सायों में नाचती हैं
हम एशिया के अवाम सूरज की तरह डूबे हैं और उभरे
दुखों की अग्नि में तप के निखरे
हमारी आँखों के आगे कितनी सियाह सदियों की साँस टूटी
न जाने कितने बलन्द परचम
हमारी नज़रों के सामने सरनिगूँ[2] हुए हैं
उलटते देखे हैं तख़्त हमने
उजड़ते देखे हैं ताज हमने
हमारे सीने से जाने कितने रथों के पहिये गुज़र चुके हैं
मगर हम इस भूक, क़त्ल, इफ़लास[3] के अँधेरे
हवादिसे-रोज़गार[4] के तुन्दो-तेज़[5] शो'लों में अनगिनत जन्म ले चुके हैं
हम अपनी धरती की कोख में बीज की तरह दफ़्न हो गये थे
मगर नयी सुबह की हवा में
बहार की कोंपलों में तब्दील होके बाहर निकल पड़े

---

1. प्रचण्ड, 2. सर झुकाए हुए, 3. कंगाली, 4. रोजग़ार की समस्याएँ, 5. तेज़ लपकते और भड़कते हुए।

यह एशिया की ज़मीं, तमद्दुन की कोख, तहज़ीब का वतन है
जबीं पे तारों का ताज, पैरों में झाग की झाँझनों का नग़मा
ज़मीन-सदियों पुराना चेहरा
किसान-सदियों पुराने हाथों में अपने लकड़ी के हल सँभाले
ग़रीब मज़दूर, जलती आँखें
उचाट नींदों की तल्ख़[1] रातें
थके हुए हाथ, भाप का ज़ोर, गर्म फ़ौलाद की रवानी
जहाज़, मल्लाह, गीत, तूफ़ाँ
कुम्हार, लोहार, चाक, बरतन
ग्वालनें दूध में नहायी
अलावों के गिर्द बूढ़े अफ़साना-गो, कहानी
जवान माँओं की गोद में नन्हे-नन्हे बच्चों के भोले चेहरे
लहकते मैदान गायें, भैंसें
फ़ज़ाओं में बाँसुरी का लहरा
हरी-भरी खेतियों में शीशे की चूड़ियाँ खनखना रही हैं
उदास सहरा पयम्बरों की तरह से ख़ामोश और गम्भीर
खजूर के पेड़ बाल खोले
दफ़ों की आवाज़ ढोलकों की गमक
समन्दर के क़हक़हे नारियल के पेड़ों की सर्द आहें

सितार के तार से बरसते हुए सितारे
अनार के फूल, आम का बौर, सेबो-बादाम के शिगूफ़े
कोठार, खलियान, खाद के ढेर, कुँवारी पगडण्डियों की गर्दिश
बलन्द बाँसों के झुण्ड हँसती धनक के नीचे
घनेरे जंगल
पठार, मैदान, रेगज़ारों[2] के गर्म सीने
गुफाएँ जन्नत की तरह ठण्डी
समन्दरों में कँवल के फूलों की तरह रखे हुए जज़ीरे
चमकते मूँगों की मुस्कराहट
वो सीपियों की हँसी, वह सन्थाल लड़कियों के चमकते दाँतों की तरह मोती
वो मछलियाँ गोश्त से भरी कश्तियाँ जो पिघली
सफ़ेद चाँदनी में तैरती हैं

---

1. कड़वी, नागवार, 2. मरुस्थल।

वो लम्बी-लम्बी हसीन नदियाँ
जो अपनी मौजों से साहिलों के लरज़ते होंटों को चूमती हैं
दुल्हन बनी वादियों की नाज़ुक कमर में झरनों के नर्म हल्क़े
पहाड़ियों की हथेलियों पर धरे हुए नीलगूँ कटोरे
सितारे मुँह देखते हैं झीलों के आईने में
हिमालया के गले में गंगा की और जमुना की शोख़ बाँहें
पहाड़ की आँधियों के माथों पे बर्फ़ के नीलगूँ दुपट्टे
बलन्दियों पर ख़फ़ीफ़[1]-सा इर्तिआ़श[2] हलकी-सी रागिनी का

यह एशिया है, जवान, शादाब और धनवान एशिया है
कि जिसके निर्धन ग़रीब बच्चों को भूक के नाग डस रहे हैं
वो होंट जो माँ के दूध के बाद फिर न वाक़िफ़ हुए
कभी दूध के मज़े से
ज़बानें ऐसी जिन्होंने चक्खा नहीं है, गेहूँ की रोटियों को
वह पीठ जिसने सफ़ेद कपड़ा छुआ नहीं है
वो उँगलियाँ जो किताब से मस नहीं हुई हैं
वो पैर जो बूट और स्लीपर की शक्ल पहचानते नहीं हैं
वो सर जो तकियों की नर्म लज़्ज़त से बेख़बर हैं
वो पेट जो भूक ही को भोजन समझ रहे हैं
ये नादिरे-रोज़गार[3] इन्साँ
तुम्हें फ़क़त एशिया की जन्नत ही में मिलेंगे
जो तीन सौ साल के 'तमद्दुन' के बाद भी 'जानवर' रहे हैं
कहाँ हो 'तहज़ीब और तमद्दुन' की रौशनी लेके आनेवालो
तुम्हारी 'तहज़ीब' की नुमाइश है एशिया में

कहीं ज़माने में इस क़दर दर्दनाक चेहरे नहीं मिलेंगे
तुम्हारी शाहाना यादगारों से एशिया का
हर-एक कोना भरा हुआ है
कहीं पे मेहराबे-फ़त्ह बाँधी
कहीं रुऊ़नत[4] की लाट उठायी
कहीं पे काँसे के घोड़े ढाले
कहीं पे पत्थर के बुत बनाये

---

1. थोड़ा, 2. कम्पन, 3. दुनिया भर में सबसे श्रेष्ठ, 4. स्वच्छन्दता, उद्दण्डता।

मगर यह 'तहज़ीब और तमद्दुन' की यादगारें कहीं नहीं हैं
बुलाओ अपने मुसव्विरों[1] और बुतगरों को
कहो कि इन दर्दनाक चेहरों से एक-इक म्यूज़ियम सजा दें
तुम्हारे कारे-अज़ीम को जाविदाँ[2] बना दें

अब एशिया की ज़मीं पे हाथों का एक जंगल उगा हुआ है
यह संगे-मरमर की, संगे-अस्वद की मुट्ठियाँ हैं
कँवल की कलियाँ, कपास के फूल, बम के और नारियल के गोले
कहाँ हैं ऐ नौ-अरूसे-सुब्हे-बहार[3] आजा
हमारी बेताब मुट्ठियों में
शफ़क़ का सिन्दूर
चाँद तारों के फूल
किरनों की सुर्ख़ अफ़शाँ भरी हुई है।

---

1. चित्रकारों, 2. हमेशा रहनेवाला, शाश्वत, 3. वसन्त की सुबह रूपी नयी दुल्हन।

अवध की ख़ाक-ए-हसीं

गुज़रती बरसात आते जाड़ों के नर्म लमहे
हवाओं में तितलियों के मानिन्द उड़ रहे हैं
मैं अपने सीने में दिल की आवाज़ सुन रहा हूँ
रगों के अन्दर लहू की बूँदें मचल रही हैं
मिरे तसव्वुर के ज़ख़्म-खुर्दा
उफ़ुक़[1] से यादों के कारवाँ यूँ गुज़र रहे हैं
कि जैसे तारीक[2] शब[3] के तारीक आसमाँ से
चमकते तारों के मुसकराते हुजूम गुज़रें

मैं क़ैदख़ाने में इश्क़े-पेचाँ की सब्ज़ बेलों को ढूँढ़ता हूँ
जो फैल जाती हैं अपने फूलों के नन्हे-नन्हे चिराग़ लेकर
कहाँ हैं वो दिल-नवाज़ बाँहें
वह शाख़े-सन्दल
कि जिस पर अँगड़ाइयों ने अपने हसीं नशेमन बना लिये हैं
मैं अपनी माँ के सफ़ेद आँचल की छाँव को याद कर रहा हूँ
मेरी बहन ने मुझे लिखा है
नदी के पानी में बेर की झाड़ियाँ अभी तक नहा रही हैं
पपीहे रुख़सत नहीं हुए हैं
अभी वो अपनी सुरीली आवाज़ से दिलों को लुभा रहे हैं

मैं रात के वक़्त अपने ख़्वाबों में चौंक पड़ता हूँ जैसे मुझको
अवध की मिट्टी बुला रही है
हसीन झीलें कँवल के फूलों की चादरों में ढँकी हुई हैं
फ़ज़ाओं में मेघदूत परवाज़ कर रहे हैं
न जाने कितनी महब्बतों के पयाम लेकर
घटाओं की अप्सराएँ अपनी
घनेरी ज़ुल्फ़ों में आख़िरी बार मुस्करा कर

---

1. क्षितिज, 2. अँधेरी, 3. रात।

ख़लीजे-बंगाल[1] और बहे-अरब[2] के मोती पिरो रही हैं
हरे परों और नीले फूलों के मोर ख़ुश हो के नाचते हैं

क़दीम गंगा का पाक पानी ज़मीं के दामन को धो रहा है
वो खेतियाँ धान से भरी हैं
जहाँ हवाएँ अज़ल के दिन से सितार अपने बजा रही हैं
हिमालया की बलन्दियाँ बर्फ़ से ढकी हैं
उन आसमाँ-बोस चोटियों को
सहर के सूरज ने सात रंगों की कल्यिों से सजा दिया है
शफ़क़ की सुर्ख़ी में मेरी बहनों की मुस्कराहट घुली हुई है

मिरे तसव्वुर में साक़ियों का ख़िरामे-रंगीन न जामो-मीना की गर्दिशें हैं
न मयकदे हैं न शोरिशें[3] हैं
मैं छोटे-छोटे घरों की छोटी-सी ज़िन्दगी में घिरा हुआ हूँ
अँधेरे क़स्बों को याद करके तड़प रहा हूँ
वो जिन की गलियों में मेरे बचपन की यादें अब तक भटक रही हैं
जहाँ के बच्चे पुराने कपड़ों की मैली गुड़ियों से खेलते हैं
वो गाँव जो सैकड़ों बरस से बसे हुए हैं
किसानों के झोंपड़ों पर तरकारियों की बेलें चढ़ी हुई हैं
पुराने पीपल की जड़ में पत्थर के देवता बेख़बर पड़े हैं
क़दीम बरगद के पेड़ अपनी जटाएँ खोले हुए खड़े हैं

ये सीधे-सादे ग़रीब इन्सान नेकियों के मुजस्समे हैं
ये मेहनतों के ख़ुदा ये तख़लीक़ के पयम्बर
जो अपने हाथों के खुरदरेपन से ज़िन्दगी को सँवारते हैं
लोहार के घन के नीचे लोहे की शक्ल तब्दील हो रही है
कुम्हार का चाक चल रहा है
सुराहियाँ रक़्स कर रही हैं
सफ़ेद आटा सियाह चक्की से राग बनकर निकल रहा है
सुनहरे चूल्हों में आग के फूल खिल रहे हैं
पतीलियाँ गुनगुना रही हैं
धुएँ से काले तवे भी चिन्गारियों के होंटों से हँस रहे हैं
दुपट्टे आँगन में डोरियों पर टँगे हुए हैं

---

1. बंगाल की खाड़ी, 2. अरबसागर, 3. झगड़े।

और उनके आँचल से धानी बूँदें टपक रही हैं
सुनहरी पगडण्डियों के दिल पर
सियाह लहँगों की सुर्ख़ गोटें मचल रही हैं

यह सादगी किस क़दर हसीं है
मैं जेल में बैठे-बैठे अकसर यह सोचता हूँ
जो हो सके तो अवध की प्यारी ज़मीन को गोद में उठा लूँ
और उसकी शादाब लहलहाती हुई जबीं को
हज़ारों बोसों से जगमगा दूँ

मैं अपने बचपन के साथियों की गरजती आवाज़ सुन रहा हूँ
वो कारख़ानों के सामने इन्क़िलाब बनकर खड़े हुए हैं
वो खेतियों में बहार बनकर रवाँ-दवाँ हैं
अँधेरी कानों की तीरगी में
वो नूर बनकर उतर रहे हैं
ज़मीं के सीने पे काश्तकारों की लाठियों के
हज़ारों जंगल उगे हुए हैं
कुदालें खेतों की पासबाँ हैं, दराँतियाँ जगमगा रही हैं

ग़रीब सीता के घर पे कब तक रहेगी रावण की हुक्मरानी
द्रौपदी का लिबास उसके बदन से कब तक छिना करेगा
शकुन्तला कब तक अन्धी तक़दीर के भँवर में फँसी रहेगी
यह लखनऊ की शिगुफ़्तगी[1] मक़बरों में कब तक दबी रहेगी
सरों के ऊपर मुसीबतों के पहाड़ कब तक गिरा करेंगे
बिलकती आँतों को भूक कब तक डसा करेगी
ज़मीं के सीने पें क़ातिलों के गिरोह कब तक चला करेंगे
ख़बासतें[2] कब तलक अहिंसा का रूप धारे फिरा करेंगी

किसान जो अपनी धरती पे जानवर की तरह झुके हैं
वो जिनकी पीठों पे भारी ईंटें लदी हुई हैं
जो कच्चे चमड़े के सख़्त जूतों से पिट रहे हैं
ये ज़िस्म जो कारख़ानेदारों की भट्ठियों में उबल रहे हैं

---

1. प्रसन्नता, 2. दुष्टता।

ये हाथ लोहे के दाँत जिनको चबा रहे हैं
ये ख़ून जो नफ़अख़ोर बनियों की थैलियों में खनक रहा है
ये औरतें जिनके हाथ पीछे बँधे हुए हैं
जो ऊँचे पेड़ों पे अपने बालों की फाँसियों में लटक रही हैं
यह काँपती मुफ़लिसी[1] जो आयी है छातियों का लगान लेकर
ये नन्हे बच्चे जो मालिकों के मवेशियों को चरा रहे हैं
जो खेत मज़दूर भूके रहकर ज़मीं से गेहूँ उगा रहे हैं
ये अपने सीने की आग कब तक दबा सकेंगे
ये अपनी नफ़रत का ज़हर कब तक छुपा सकेंगे
ये ज़ख़्म कब तक हरे रहेंगे

अवध की ख़ाके-हसीं के ज़र्रे बगूले बनकर मचल रहे हैं
अब आँसुओं की पुरानी झीलों से सुर्ख़ शोले उबल रहे हैं
ग़मों की भारी सिलें दिलों से सरक रही हैं
शुजाअतें[2] गोफनों को लेकर निकल रही हैं
झुके हुए सर उभरते सूरज की शानो-शौकत से उठ रहे हैं
यह सूरमाओं की सरज़मीं है
यह आसमाने-ख़मोश तूफ़ाने-बर्क़ो-बाराँ[3] का आसमाँ है
यह मुस्कराती हुई फ़ज़ा सुर्ख़ आँधियों से भरी हुई है
यहाँ का एक-एक चप्पा लाखों बग़ावतों से बसा हुआ है
बग़ावतें जो हर-इक शहनशाहियत की चूलें हिला चुकी हैं
बग़ावतें जो साम्राज को बलन्दियों से गिरा चुकी हैं
बग़ावतें जो फ़िरंगियों के दिलों पे हैबत बिठा चुकी हैं
यही पुरानी बग़ावतें फिर नये सिरे से जवाँ हुई हैं
मिरे वतन की ज़मीं को नापाक करने वालो
मैं उन पुरानी-नयी अवामी बग़ावतों ही का तरजुमाँ हूँ
मैं अपने अहले-वतन के एहसास और जज़्बात की ज़बाँ हूँ

अवध की ख़ाके-हसीं के ज़र्रो
जो सैकड़ों मील दूर से उड़के मेरे ख़्वाबों में आ गये हो
मिरे वतन की ज़मीं से मेरा सलाम कहना
उसे बताना

1. ग़रीबी, 2. वीरता, 3. बिजली और बादलों के तूफ़ान।

कि मेरे होंटों पे संगो-आहन की सर्द मुहरें लगी हुई हैं
वह काला क़ानून एक दीवार बनके रस्ते में आ गया है
जिसे अहिंसा का नाम लेकर पुजारियों ने खड़ा किया है
मगर यह दीवार रोक सकती नहीं हैं मुझको
उबलते ज्वालामुखी को कोई दबा सका है?
मैं आज मजबूर हूँ तो क्या है
वतन से कुछ दूर हूँ तो क्या है
मगर मैं उसके मुजाहिदों की सफ़ों से बाहर नहीं गया हूँ

पत्थर की दीवार

क्या कहूँ भयानक है
या हसीं है यह मंज़र
ख़्वाब है कि बेदारी
कुछ पता नहीं चलता
फूल भी है साये भी
ख़ाक भी है पानी भी
आदमी भी मेहनत भी
गीत भी हैं आँसू भी
फिर भी एक ख़ामोशी
रूहो-दिल की तनहाई
इक तवील सन्नाटा
जैसे साँप लहराये
माहो-साल आते हैं
और दिन निकलते हैं
जैसे दिल की बस्ती से
अजनबी गुज़र जाए

चीख़ती हुई घड़ियाँ
ज़ख़्म-खुर्दा ताइर[1] हैं
नर्मरौ[2] सबुक[3] लमहे[4]
मुंजमिद सितारे हैं
रेंगती हैं तारीख़ें
रोज़ो-शब की राहों पर
ढूँढ़ते हैं चश्मो-दिल
नक़्शे-पा नहीं मिलते
ज़िन्दगी के गुलदस्ते

---

1. घाव खाया हुआ पक्षी, 2. मन्दगति, 3. द्रुतगति, 4. क्षण।

ज़ेबे-ताक़े-निस्याँ हैं[1]

पत्तियों की पलकों पर
ओस जगमगाती है
इमलियों के पेड़ों पर
धूप पर सुखाती है
आफ़ताब हँसता है
मुस्कराते हैं तारे
चाँद के कटोरे से
चाँदनी छलकती है
जेल की फ़ज़ाओं में
फिर भी इक अँधेरा है
जैसे रेत में गिर कर
दूध जज़्ब हो जाए
रौशनी के गालों पर
तीरगी के नाख़ुन की
सैकड़ों ख़राशें हैं

पत्थरों की दीवारें

बारिकों की तामीरें
अज़दहों के पैकर[2] हैं
जो नये असीरों[3] को
रात-दिन निगलते हैं
उनके पेट की दोज़ख़
कोई भर नहीं सकता

पत्थरों की दीवारें

भूक का भयानक रूप
चक्कियों के भद्दे राग
रोटियों के दाँतों में
रेत और कंकर हैं

---

1. विस्मृति के आले में सजे हुए हैं, 2. शरीर, 3. क़ैदी।

दाल के पियालों में
ज़र्द-ज़र्द पानी है
चावलों की सूरत पर
मुफ़लिसी बरसती है
सब्ज़ियों के ज़ख़्मों से
पीप-सी टपकती है

पत्थरों की दीवारें

दर्दो-ग़म के पैरों में
आँसुओं की ज़ंजीरें
बेबसी की महफ़िल में
हसरतों की तक़रीरें
रस्सियों की गाँठों में
बाज़ुओं की गोलाई
नीम-जान क़दमों में
बेड़ियों की शहनाई
हथकड़ी के हल्कों[1] में
हाथ कसमसाते हैं
फाँसियों के फन्दों में
गरदनें तड़पती हैं

पत्थरों की दीवारें

जो कभी नहीं रोतीं
जो कभी नहीं हँसतीं
उनके सख़्त चेहरे पर
रंग है न ग़ाज़ा है
खुरदरे लबों पर सिर्फ़
बेहिसी की मुहरें हैं

पत्थरों की दीवारें

पत्थरों के फ़र्श और छत
पत्थरों की मेहराबें
पत्थरों की पेशानी

---

1. गोलाइयाँ।

पत्थरों की आँखें हैं
पत्थरों के दरवाज़े
पत्थरों की अँगड़ाई
पत्थरों के पंजों में
आहनी[1] सलाख़ें हैं

और इन सलाख़ों में
हसरतें तमन्नाएँ
आरज़ुएँ उम्मीदें
ख़्वाब और ताबीरें
अश्क फूल और शबनम
चाँद की जवाँ नज़रें
धूप की सुनहरी ज़ुल्फ़
बादलों की परछाईं
सुब्ह़ो-शाम की परियाँ
मौसमों की लैलाएँ
सूलियों पे चढ़ती हैं

और इस अँधेरे में
सूलियों के साये में
इन्क़िलाब पलता है
तीरगी[2] के काँटों पर
आफ़ताब चलता है
पत्थरों के सीने से
सुर्ख़ हाथ उगते हैं
हाथ हैं कि तलवारें
रात के अँधेरे में
जैसे शम्अ़ जलती है
उँगलियाँ फ़ुरोज़ाँ हैं
बारिकों के कोनों से
साज़िशें निकलती हैं
ख़ामुशी की नब्ज़ों में
घण्टियाँ-सी बजती हैं

---

1. लोहे की, 2. अँधेरा।

जाने कैसे क़ैदी हैं
किस जहाँ से आये हैं
नाखुनों में कीलें हैं
हड्डियाँ शिकस्ता हैं
नौजवान जिस्मों पर
पैरहन[1] हैं ज़ख़्मों के
जगमगाते माथों पर
ख़ून की लकीरें हैं
अश्क आग के क़तरे
साँस तुन्द[2] आँधी है
बात है कि तूफ़ाँ है
अबरुओं की जुम्बिश में
अज़्म[3] मुस्कराते हैं
और निगह की लरज़िश में
हौसले मचलते हैं
त्योरियों की शिकनों में
नक़्शे-पा बग़ावत के

जितना जुल्म सहते हैं
और मुस्कराते हैं
जितना दुःख उठाते हैं
और गीत गाते हैं
जब्र और बढ़ता है
ज़ह्र और चढ़ता है
ज़ालिमों की शिद्दत पर
जुल्म चीख़ उठता है।
उनके लब नहीं हिलते
उनके सर नहीं झुकते
दिल से आह के बदले
इक सदा निकलती है
'इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद'

---

1. लिबास, पहनावा, कुर्ता, 2. प्रचण्ड, 3. संकल्प।

ख़ाके-पाक[1] के बेटे
खेतियों के रखवाले
हाथ कारख़ानों के
इन्क़िलाब के शहपर
कोहसार के शाहीं
पत्थरों की कोरों पर
आँधियों की राहों पर
बिजलियों की बारिश में
गोलियों के तूफ़ाँ में
सर उठाये बैठे हैं

इन्क़िलाब-सामाँ है
हिन्द की फ़ज़ा सारी
नज़्अ़ के है आलम में
यह निज़ामे-ज़रदारी
वक़्त के महल में है
जश्ने-नौ की तैयारी
जश्ने-आम जुम्हूरी
इक़्तिदारे-मज़दूरी
ग़र्क़े-आतिशो-आहन
बेबसी-ओ-मजबूरी
मुफ़लिसी-ओ-नादारी
तीरगी के बादल से
जुगनुओं की बारिश है
रक़्स में शरारे हैं
हर तरफ़ अँधेरा है
और इस अँधेरे में
हर तरफ़ शरारे हैं
कोई कह नहीं सकता
कौन-सा शरारा कब
बेक़रार हो जाए
शो'लाबार हो जाए
इन्क़िलाब आ जाए

1. पवित्र धरती।

तुम्हारी आँखें

तुम्हारी आँखें
हसीन, शफ़्फ़ाफ़, मुस्कराती, जवान आँखें
लरज़ती पलकों की चिलमनों में
शहाबी चेहरे पे अबरुओं की कमाँ के नीचे
तुम्हारी आँखें
वो जिनकी नज़रों के ठण्डे साये में मेरी उल्फ़त
मिरी जवानी की रात परवान चढ़ रही थी
तुम्हारी आँखें
अँधेरी रातों में जो सितारों की रौशनी से
फ़ज़ाए-ज़िन्दाँ में झाँकती हैं

मैं लिख रहा हूँ
तुम्हारी आँखें सफ़ेद काग़ज़ पे अपनी पलकों से चल रही हैं
मैं पढ़ रहा हूँ
तुम्हारी आँखें हर इक सतूर की भौओं के नीचे लरज़ रही हैं
मैं सो रहा हूँ
तुम्हारी आँखें तुम्हारी पलकें कहानियाँ-सी सुना रही हैं
मैं दोस्तों और साथियों में घिरा हुआ हूँ
मसर्रतों[1] के गुलाब हर सिम्त[2] खिल रहे हैं
तुम्हारी आँखों के फूल गोया महक रहे हैं

मुझे गिरिफ़्तार करके जब जेल ला रहे थे पुलिस वाले
तुम अपने बिस्तर से अपने दिल के
अधूरे ख़्वाबों को लेके बेदार हो गयी थीं
तुम्हारी पलकों से नींद अब भी टपक रही थी
मगर निगाहों में नफ़रतों के अज़ीम शोले भड़क उठे थे

---

1. आनन्द, 2. तरफ़।

तुम्हारी आँखें हिक़ारतों के जहन्नमों को जगा रही थीं
निज़ामे-ज़ुल्मो-सितम पे बिजली गिरा रही थीं

मिरी महब्बत ने अपनी जन्नत का हुस्न देखा
तुम्हारी आँखों पे मेरी नज़रों के प्यार बरसे
मिरी उमीदों, मिरी तमन्नाओं ने सदा दी
यह नफ़रतों की अज़ीम मशुअ़ल जलाये रखना
कि यह महब्बत के दिल का शो'ला है जिसकी रंगीन रौशनी में
हमारे ख़्वाबों के रास्ते जगमगा रहे हैं
तुम्हारी आँखें
जो मेरे सीने में तैरती हैं
कँवल की कलियाँ जो मेरे दिल में खिली हुई हैं
उन्हीं से दो और आँखें बेदार[1] हो गयी हैं
वो नन्हे-नन्हे चमकते हीरों की नन्ही कनियाँ
जो मेरी आँखों का नूर लेकर तुम्हारे आँचल से झाँकती हैं
फिर और आँखें, फिर और आँखें, फिर और आँखें
यह सिलसिला ता-अबद रहेगा
ज़माने की गोद में सितारों के हुस्न की नदियाँ बहेंगी
वो सब तुम्हारी
वो सब हमारी ही आँखें होंगी
हमारी आँखें कि जिनसे शो'ले बरस रहे हैं
मगर वह कल का हसीन दिन देखो कितना नज़्दीक आ गया है
हमारी आँखों से जब बहारें छलक पड़ेंगी

---

1. जाग्रत।

नींद

अपने बच्चे की पहली सालगिरह पर

रात ख़ूबसूरत है
नींद क्यों नहीं आती

दिन की ख़श्मगीं नज़रें
खो गयीं सियाही में
आहनी कड़ों का शोर
बेड़ियों की झनकारें
क़ैदियों की साँसों की
तुन्दो-तेज़ आवाज़ें
जेलरों की बदकारी
गालियों की बौछारें
बेबसी की ख़ामोशी
ख़ामुशी की फ़रयादें
तहनशीं अँधेरे में
शब की शोख़ दोशीज़ा[1]
ख़ारदार तारों को
आहनी हिसारों[2] को
पार करके आयी है
भर के अपने आँचल में
जंगलों की ख़ुशबूएँ
ठण्डकें पहाड़ों की
मेरे पास लायी है

नीलगूँ जवाँ सीनः
नीलगूँ जवाँ बाँहें
कहकशाँ[3] की पेशानी

---

1. जवान और अल्हड़ लड़की, 2. लोहे के घेरे, 3. आकाश-गंगा।

नीम चाँद का जूड़ा
मख़मलीं अँधेरे का
पैरहन लरज़ता है
वक़्त की सियाह ज़ुल्फ़ें
ख़ामोशी के शानों पर[1]
ख़म-ब-ख़म महकती हैं
और ज़मीं के होंटों पर
नर्म शबनमी बोसे
मोतियों के दाँतों से
खिलखिला के हँसते हैं
रात ख़ूबसूरत है
नींद क्यों नहीं आती

रात पेंग लेती है
चाँदनी के झूले में
आसमान पर तारे
नन्हे-नन्हे हाथों से
बुन रहे हैं जादू-सा
झींगुरों की आवाज़ें
कह रही हैं अफ़साना
दूर जेल के बाहर
बज रही है शहनाई
रेल अपने पहियों से
लोरियाँ सुनाती है
रात ख़ूबसूरत है
नींद क्यों नहीं आती

रोज़ रात को यूँ ही
नींद मेरी आँखों से
बेवफ़ाई करती है
मुझको छोड़कर तन्हा
जेल से निकलती है

1. ख़ामोशी के कन्धों पर।

बम्बई की बस्ती में
मेरे घर का दरवाज़ा
जाके खटखटाती है
एक नन्हे बच्चे की
अँखड़ियों के बचपन में
मीठे-मीठे ख़्वाबों का
शहद घोल देती है
इक हसीं परी बनकर
लोरियाँ सुनाती है
पालना हिलाती है

सेण्ट्रल जेल, नासिक : अप्रैल 1950

भूखी माँ, भूखा बच्चा

मेरे नन्हे, मिरे मासूम मिरे नूरे-नज़र
आ कि माँ अपने कलेजे से लगा ले तुझको
अपनी आग़ोशे-मुहब्बत में सुला ले तुझको
तेरे होंटों का यह जादू था कि सीने से मिरे
नदियाँ दूध की बह निकली थीं
छातियाँ आज मिरी सूख गयी हैं लेकिन
आँखें सूखी नहीं अब तक मिरे लाल
दर्द का चश्म-ए-बेताब रवाँ है इनसे
मेरे अश्कों ही से तू प्यास बुझा ले अपनी
सुनती हूँ खेतों में अब नाज नहीं उग सकता
काँग्रेस राज में सोना ही फला करता है
गाय के थन से निकलती है चमकती चाँदी
और तिजोरी की दराज़ों में सिमट जाती है

चाँद से दूध नहीं बहता है
तारे चावल हैं न गेहूँ न ज्वार
वरना मैं तेरे लिए चाँद सितारे लाती
मेरे नन्हे, मिरे मासूम मिरे नूरे-नज़र
आ कि माँ अपने कलेजे से लगा ले तुझको
अपनी आग़ोशे-महब्बत में सुला ले तुझको

सो भी जा मेरी महब्बत की कली
मेरी जवानी के गुलाब
मेरे इफ़लास[1] के हीरे सो जा
नींद में आएँगी हँसती हुई परियाँ तिरे पास
बोतलें दूध की शरबत के कटोरे लेकर

---

1. अभावग्रस्तता।

जाने आवाज़ की लोरी थी कि परियों का तिलिस्म
नींद-सी आने लगी बच्चे को
खिंच गयी नीलगूँ होंटों पे ख़मोशी की लकीर
मुट्ठियाँ खोल दीं और मूँद लीं आँखें अपनी
यूँ ढलकने लगा मनका जैसे
शाम के ग़ार में सूरज गिर जाए

झुक गयी माँ की जबीं बेटे की पेशानी पर
अब न आँसू थे, न सिसकी थी न लोरी न कलाम
एक सन्नाटा था
एक सन्नाटा था तारीको-तवील[1]

---

1. अँधेरा और विस्तृत

अनाज

मेरी आशिक़ हैं किसानों की हसीं कन्याएँ
जिनके आँचल ने महब्बत से उठाया मुझको
खेत को साफ़ किया, नर्म किया मिट्टी को
और फिर कोख में धरती की सुलाया मुझको
ख़ाक-दर-ख़ाक हर-इक तह में टटोला लेकिन
मौत के ढूँढ़ते हाथों ने न पाया मुझको
ख़ाक से लेके उठा मुझको मिरा ज़ौक़े-नुमू[1]
सब्ज़ कोंपल ने हथेली में छुपाया मुझको
मौत से दूर मगर मौत की इक नींद के बाद
जुम्बिशे-बादे-बहारी ने जगाया मुझको
बालियाँ फूलीं तो खेतों पे जवानी आयी
उन परीज़ादों ने बालों में सजाया मुझको
मेरे सीने में भरा सुर्ख़ किरन ने सोना
अपने झूले में हवाओं ने झुलाया मुझको
मैं रकाबी में, प्यालों में महक सकता हूँ
चाहिए बस लबो-रुख़सार[2] का साया मुझको

मेरी आशिक़ हैं किसानों की हसीं कन्याएँ
गोद से उनकी कोई छीन के लाया मुझको
हवसे-ज़र ने मुझे आग में फूँका है कभी
कभी बाज़ार में नीलाम चढ़ाया मुझको
क़ैद रक्खा कभी लोहे में कभी पत्थर में
कभी गोदामों की क़बरों में दबाया मुझको
सी के बोरों में मुझे फेंका है तहख़ानों में
चोर बाज़ार कभी रास न आया मुझको
वो तरसते हैं मुझे और मैं तरसता हूँ उन्हें
जिनके हाथों की हरारत ने उगाया मुझको
क्या हुए आज मिरे नाज़ उठानेवाले
हैं कहाँ क़ैदे-गुलामी से छुड़ानेवाले

1. विकसित होने का आनन्द, 2. होंठ और गाल।

एक ख़्वाब और

ख़्वाब अब हुस्ने-तसव्वुर के उफ़ुक़[1] से हैं परे
दिल के इक जज़्बए-मासूम ने देखे थे जो ख़्वाब
और ताबीरों के तपते हुए सहराओं में
तश्नगी[2] आब्लापा[3] शो'ला-ब-कफ़ मौजे-सराब[4]
यह तो मुमकिन नहीं बचपन का कोई दिन मिल जाए
या पलट आये कोई साअते-नायाबे-शबाब[5]
फूट निकले किसी अफ़सुर्दा तबस्सुम[6] से किरन
या दमक उट्ठे किसी दस्ते-बुरीदा[7] में गुलाब
आह पत्थर की लकीरें हैं कि यादों के नुक़ूश
कौन लिख सकता है फिर उम्रे-गुज़श्ता की किताब
बीते लमहात के सोये हुए तूफ़ानों में
तैरते फिरते हैं फूटी हुई आँखों के हबाब[8]
ताबिशे-रंगे-शफ़क़[9], आतिशे-रूए-ख़ुर्शीद[10]
मल के चेहरे पे सहर आयी है ख़ूने-अहबाब
जाने किस मोड़ पे किस राह में क्या बीती है
किससे मुमकिन है तमन्नाओं के ज़ख़्मों का हिसाब
आस्तीनों को पुकारेंगे कहाँ तक आँसू
अब तो दामन को पकड़ते हैं लहू के गिर्दाब
देखती फिरती है एक-एक का मुँह ख़ामोशी
जाने क्या बात है शर्मिन्दा है अन्दाज़े-ख़िताब
दर-ब-दर ठोकरें खाते हुए फिरते हैं सवाल
और मुजरिम की तरह उनसे गुरेज़ाँ हैं जवाब
सरकशी, फिर मैं तुझे आज सदा देता हूँ
मैं तिरा शाइरे-आवारा-ओ-बेबाको-ख़राब
फेंक फिर जज़्बए-बेताब की आ़लम पे कमन्द
एक ख़्वाब और भी ऐ हिम्मते-दुश्वारपसन्द

---

1. क्षितिज, 2. जिसके पैरों में छाले पड़े हुए हों, 3. प्यास, 4. मृगतृष्णा की तरंग, 5. अप्राप्य जवानी का कोई क्षण, 6. बुझी हुई मुस्कराहट, 7. कटे हाथ में, 8. बुलबुले, 9. उषा की लालिमा की चमक, 10. सूर्य के मुख की आग।

ग़ज़ल

काम अब कोई हैं न आएगा बस इक दिल के सिवा
रास्ते बन्द हैं सब कूचए-क़ातिल के सिवा
बाइसे-रश्क[1] है तन्हारवी-ए-रहरवे-शौक़[2]
हम सफ़र कोई नहीं दूरी-ए-मंज़िल के सिवा
हमने दुनिया की हर इक शय से उठाया ¦ दिल को
लेकिन इक शोख़ के हंगाम-ए-महफ़िल के सिवा
तेग़े-मुन्सिफ हो जहाँ, दारो-रसन[3] हों शायद
बेगुनाह कौन है इस शहर में क़ातिल के सिवा
जाने किस रंग से आयी है गुलिस्ताँ में बहार
कोई नग़मा ही नहीं शोरे-सलासिल के सिवा

---

1. जिसे देखकर प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न हो, 2. प्रेम के मार्ग के यात्री का अकेलापन,
3. सूली और फाँसी।

हसीनतर

कल एक तू होगी और इक मैं
कोई रक़ीबे-रफ़ीक़-सूरत[1]
कोई रफ़ीक़े-रक़ीब सामाँ
मेरे तेरे दरमियाँ न होगा

हमारी उम्रे-रवाँ की शबनम
तेरी सियह काकुलों की रातों
में तार चाँदी के गूँध देगी
तिरे हसीं आ़रिज़ों[2] के रंगीं
गुलाब-बेले के फूल होंगे
शफ़क़ का हर रंग ग़र्क़ होगा
लतीफ़ो-पुरकैफ़ चाँदनी में

तिरी किताबे-रुख़े-जवाँ पर
कि जो ग़ज़ल की किताब है अब
ज़माना लिखेगा एक कहानी
और अनगिनत झुर्रियों के अन्दर
मिरी महब्बत के सारे बोसे
हज़ार लब बन के हँस पड़ेंगे

हम अपनी बीती हुई शबों की
सलोनी परछाइयों को लेकर
हम अपने अहदे-तरब की शामो-
सहर की रानाइयों को लेकर
पुरानी यादों के जिस्मे-उर्यां[3]
के वास्ते पैरहन बुनेंगे

---

1. मित्र समान दुश्मन, 2. कपोल, 3. नग्न शरीर।

फिर एक तू होगी और इक मैं
कोई रक़ीबे-रफ़ीक़-सूरत
कोई रफ़ीक़े-रक़ीब-सामाँ
मिरे तिरे दरमियाँ न होगा
हवस की नज़रों को तेरे रुख़ पर
जमाले-नौ का गुमाँ न होगा
फ़क़त मिरी हुस्न-आज़मूदा-
नज़र[1] यह तुझको बता सकेगी
कि तेरी पीरी[2] का हुस्न तेरे
शबाब से भी हसीनतर है

---

1. हुस्न की आज़माई हुई नज़र (हुस्न आज़मूदा नज़र को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए),
2. वृद्धावस्था।

लम्हों के चिराग़

वो नींद की तरह नर्म सब्ज़ा
ख़्वाबों की तरह रमीदा[1] शबनम
फूलों की तरह शिगुफ़्ता चेहरे
खुशबू की तरह लतीफ़ बातें
किरनों की तरह जवाँ तबस्सुम
शो'ले की तरह दहकती ख़्वाहिश
तारों की तरह चमकती आग़ोश
साग़र की तरह छलकते सीने
सब क़ाफ़िला-ए-अदम[2] के राही
वादि-ए-अदम में चल रहे हैं
तारीकियों के खुले हैं परचम
लम्हों के चिराग़ जल रहे हैं
हर लम्हा हसीं और जवाँ है
हर लम्हा फ़रोग़े-जिस्मों-जाँ[3] है
हर लम्हा अज़ीमो-जाविदाँ[4] है

---

1. भागा हुआ, 2. परलोक जाने वाला क़ाफ़िला, 3. शरीर और प्राण का प्रकाश, 4. महान और शाश्वत।

मेरा सफ़र

'हमचू सब्ज़ा बारहा रोईदा-ईम'[1]

—रूमी

फिर इक दिन ऐसा आएगा
आँखों के दिये बुझ जाएँगे
हाथों के कँवल कुम्हलाएँगे
और बर्गे-ज़बाँ से नुत्क़ो-सदा[2]
की हर तितली उड़ जाएगी
इक काले समन्दर की तह में
कलियों की तरह से खिलती हुई
फूलों की तरह से हँसती हुई
सारी शक्लें खो जाएँगी
ख़ूँ की गर्दिश, दिल की धड़कन
सब रागनियाँ सो जाएँगी
और नीली फ़ज़ा की मख़मल पर
हँसती हुई हीरे की ये कनी
ये मेरी जन्नत, मेरी ज़मीं
इसकी सुब्हें, इसकी शामें
बे-जाने हुए, बे-समझे हुए
इक मुश्ते-ग़ुबारे-इन्साँ पर
शबनम की तरह रो जाएँगी
हरा चीज़ भुला दी जाएगी
यादों के हसीं बुतख़ाने से
हर चीज़ उठा दी जाएगी
फिर कोई नहीं ये पूछेगा
सरदार कहाँ है महफ़िल में

लेकिन मैं यहाँ फिर आऊँगा
बच्चों के दहन[3] से बोलूँगा

---

1. हम हरियाली की तरह बार-बार उगे हैं, 2. अभिव्यक्ति, 3. मुँह।

चिड़ियों की ज़बाँ से गाऊँगा
जब बीज हँसेंगे धरती में
और कोंपलें अपनी उँगली से
मिट्टी की तहों को छेडेंगी
मैं पत्ती-पत्ती, कली-कली
अपनी आँखें फिर खोलूँगा
सरसब्ज़ हथेली पर लेकर
शबनम के क़तरे तोलूँगा
मैं रंगे-हिना, आहंगे-ग़ज़ल
अन्दाज़े-सुख़न बन जाऊँगा
रुख़्सारे-उरूसे-नौ की तरह
हर आँचल से छन जाऊँगा
जाड़ों की हवाएँ दामन में
जब फ़स्ले-ख़िज़ाँ[1] को लाएँगी
रहरौ के जवाँ क़दमों के तले
सूखे हुए पत्तों से मेरे
हँसने की सदाएँ आएँगी
धरती की सुनहरी सब नदियाँ
आकाश की नीली सब झीलें
हस्ती से मिरी भर जाएँगी
और सारा ज़माना देखेगा
हर क़िस्सा मिरा अफ़साना है
हर आशिक़ है 'सरदार' यहाँ
हर माशूक़ा 'सुलताना' है

मैं एक गुरेज़ाँ लम्हा हूँ
अय्याम के अफ़्सूँ-ख़ाने में
मैं एक तड़पता क़तरा हूँ
मस्रूफ़े-सफ़र[2] जो रहता है
माज़ी की सुराही के दिल से
मुस्तक़बिल के पैमाने में
मैं सोता हूँ और जागता हूँ
और जाग के फिर सो जाता हूँ
सदियों का पुराना खेल हूँ मैं
मैं मर के अमर हो जाता हूँ

1. पतझड़ की फ़सल, 2. यात्रा में व्यस्त।

दो शे'र

हर मंज़िल इक मंज़िल है नयी और आख़िरी मंज़िल कोई नहीं
इक सैले-रवाने-दर्दे-हयात[1] और दर्द का साहिल कोई नहीं

हर गाम[2] पे ख़ूँ के तूफ़ाँ हैं, हर मोड़ पे बिस्मिल[3] रक़्साँ हैं[4]
हर लहज़ा[5] है क़त्ले-आम[6] मगर कहते हैं कि क़ातिल कोई नहीं

---

1. जीवन की व्यथाओं का सैलाब, 2. पग, 3. घायल, 4. तड़प रहे हैं, 5. क्षण, 6. सर्वसाधारण का वध।

ग़म का हीरा

ग़म का हीरा
दिल में रक्खो
किसको दिखाते फिरते हो
ये चोरों की दुनिया है

प्यास भी एक समन्दर है

प्यास भी एक समन्दर है समन्दर की तरह
जिसमें हर दर्द की धार
जिसमें हर ग़म की नदी मिलती है
और हर मौज
लपकती है किसी चाँद से चेहरे की तरफ़

अजनबी आँखें

सारी शामें उनमें डूबीं
सारी रातें उनमें खोयीं
सारे साग़र उनमें टूटे
सारी मय
ग़र्क़ उन आँखों में है
देखती हैं वो मुझे लेकिन बहुत बेगानावार।

बहुत क़रीब हो तुम

बहुत क़रीब हो तुम, फिर भी मुझसे कितनी दूर
कि दिल कहीं है, नज़र है कहीं, कहीं तुम हो
वो जिसको पी न सकी मेरी शो'ला-आशामी[1]
वो कूज़ः-ए-शकर-ओ-जामे-अंगबीं[2] तुम हो

मिरे मिज़ाज में आशुफ़्तगी[3] सबा[4] की है
मिली कली की अदा, गुल की तमकनत[5] तुमको
सबा की गोद में, फिर भी सबा से बेगाना
तमाम हुस्नो-हक़ीक़त, तमाम अफ़साना

वफ़ा भी जिस पे है नाज़ाँ वो बेवफ़ा तुम हो
जो खो गयी है मिरे दिल की वो सदा तुम हो

बहुत क़रीब हो तुम, फिर भी मुझसे कितनी दूर
हिजाबे-जिस्म[6] अभी है, हिजाबे-रूह[7] अभी
अभी तो मंज़िले-सद-मिह्रो-माह[8] बाक़ी है
हिजाबे-फ़ासिला-हाए-निगाह[9] बाक़ी है
विसाले-यार अभी तक है आरज़ू का फ़रेब

---

1. अग्निज्वाला पीने की इच्छा, 2. मिठास से भरा प्याला और शहद से भरा प्याला, 3. उद्विग्नता, 4. समीर, 5. अभिमान, 6. शरीर की दूरी, 7. आत्मा की दूरी, 8. सैकड़ों सूर्य और चंद्रमाओं की मंज़िल, 9. निगाहों की दूरियों का संकोच।

चाँद को रुख़्सत कर दो

मेरे दरवाज़े से अब चाँद को रुख़्सत कर दो
साथ आया है तुम्हारे जो तुम्हारे घर से
अपने माथे से हटा दो यह चमकता हुआ ताज
फेंक दो जिस्म से किरनों का सुनहरी ज़ेवर
तुम ही तन्हा मिरे ग़मख़ाने में आ सकती हो
एक मुद्दत से तुम्हारे ही लिए रक्खा है
मेरे जलते हुए सीने का दहकता हुआ चाँद
दिले-ख़ूँ-गश्ता[1] का हँसता हुआ ख़ुश-रंग गुलाब

---

1. ख़ून में लत-पत दिल।

जब तिरा नाम लिया

जब तिरा नाम लिया दिल ने, तो दिल से मेरे
जगमगाती हुई कुछ वस्ल की रातें निकलीं
अपनी पलकों पे सजाये हुए अश्कों के चिराग़
सर झुकाये हुए कुछ हिज्र की शामें गुज़रीं
क़ाफ़िले खो गये फिर दर्द के सहराओं में
दर्द जो तेरी तरह नूर भी है नार भी है
दुश्मने-जाँ भी है, महबूब भी, दिलदार भी है

तिरे प्यार का नाम

दिल पे जब होती है यादों की सुनहरी बारिश
सारे बीते हुए लम्हों के कँवल खिलते हैं
फैल जाती है तिरे हर्फ़े-वफ़ा की ख़ुशबू
कोई कहता है मगर रूह की गहराई से
शिद्दते-तश्नःलबी[1] भी है तिरे प्यार का नाम

---

1. प्यास की तीव्रता।

तुम नहीं आये थे जब

तुम नहीं आये थे जब, तब भी तो मौजूद थे तुम

आँख में नूर की और दिल में लहू की सूरत
दर्द की लौ की तरह, प्यार की ख़ुशबू की तरह
बेवफ़ा वादों की दिलदारी का अन्दाज़ लिये

तुम नहीं आये थे जब, तब भी तो तुम आये थे
रात के सीने में महताब के ख़ंजर की तरह
सुब्ह के हाथ में ख़ुर्शीद के साग़र की तरह
शाख़े-ख़ूँ, रंगे-तमन्ना में गुले-तर की तरह

तुम नहीं आओगे जब, तब भी तो तुम आओगे
याद की तरह, धड़कते हुए दिल की सूरत
ग़म के पैमाना-ए-सरशार को छलकाते हुए
बर्ग-हाए-लबो-रुख़्सार को महकाते हुए
दिल के बुझते हुए अंगारे को दहकाते हुए
ज़ुल्फ़-दर-ज़ुल्फ़ बिखर जाएगा फिर रात का रंग
शबे-तन्हाई में भी लुत्फ़े मुलाक़ात का रंग
रोज़ लाएगी सबा कूए-सबाहत[1] से पयाम
रोज़ गाएगी सहर तहनियते-जश्ने-फ़िराक़[2]

आओ आने की करें बात कि तुम आये हो
अब तुम आये हो तो मैं कौन-सी शय नज़्र करूँ
कि मिरे पास बजुज़ मेह्रो-वफ़ा कुछ भी नहीं
एक ख़ूँ-गश्ता तमन्ना के सिवा कुछ भी नहीं

---

1. मित्रता की गली, 2. विछोह के जश्न की मुबारकबाद।

तू मुझे इतने प्यार से मत देख

तू मुझे इतने प्यार से मत देख
तेरी पलकों के नर्म साये में
धूप भी चाँदनी-सी लगती है
और मुझे कितनी दूर जाना है
रेत है गर्म, पाँव के छाले
यूँ दहकते हैं जैसे अंगारे
प्यार की ये नज़र रहे न रहे
कौन दश्त-ए-वफ़ा[1] में जलता है
तेरे दिल को ख़बर रहे न रहे
तू मुझे इतने प्यार से मत देख

1. वफ़ा का जंगल।

तुम्हारे हाथ

तुम्हारे नर्म, हसीं, दिल-नवाज़ हाथ नहीं
महक रहे हैं मिरे हाथ में बहार के हाथ
मचल रही हैं हथेली में उँगलियों की लवें
तड़पती नब्ज़ कहे जा रही है प्यार की बात
पिघल रही है रुख़े-आतशीं[1] पे हिज्र[2] की शाम
निकल रही है सियह ज़ुल्फ़ से विसाल की रात

---

1. तमतमाता हुआ चेहरा, 2. विछोह।

नसीम तेरी क़बा

नसीम तेरी क़बा, बूए-गुल है पैराहन
हया का रंग रिदाए-बहार[1] उढ़ाता है
तेरे बदन का चमन ऐसे जगमगाता है
कि जैसे सैले-सहर, जैसे नूर का दामन
सितारे डूबते हैं चाँद झिलमिलाता है

1. बहार की चादर।

प्यास की आग

मैं कि हूँ प्यास के दरिया की तड़पती हुई मौज
पी चुका हूँ मैं समन्दर का समन्दर फिर भी
एक-इक क़तरा-ए-शबनम को तरस जाता हूँ
क़तरःए-शबनमे-अश्क
क़तरःए-शबनमे-दिल, ख़ूने-जिगर
क़तरःए-नीम नज़र
या मुलाक़ात के लम्हों के सुनहरी क़तरे
जो निगाहों की हरारत से टपक पड़ते हैं
और फिर लम्स के नूर
और फिर बात की खुशबू में बदल जाते हैं
मुझको यह क़तरःए-शादाब भी चख लेने दो
दिल में यह गौहरे-नायाब भी रख लेने दो
खुश्क हैं होंट मिरे, खुश्क ज़बाँ है मेरी
खुश्क है दर्द का, नग़मे का गुलू[1]
मैं अगर पी न सका वक़्त का यह आबे-हयात
प्यास की आग में डरता हूँ कि जल जाऊँगा

---

1. कण्ठ।

क़त्ले-आफ़ताब

शफ़क़[1] के रंग में है क़त्ले-आफ़ताब का रंग
उफ़ुक़[2] के दिल में है ख़ंजर, लहूलुहान है शाम
सफ़ेद शीशा-ए-नूर और सियाह बारिशे-संग
ज़मीं से ता-ब-फ़लक है बलन्द रात का नाम

यक़ीं का ज़िक्र ही क्या है कि अब गुमाँ भी नहीं
मक़ामे-दर्द नहीं, मंज़िले-फ़ुग़ाँ भी नहीं
वो बेहिसी[3] है कि जो क़ाबिले-बयाँ भी नहीं
कोई तरंग ही बाक़ी रही न कोई उमंग
जबीने-शौक़ नहीं संगे-आस्ताँ भी नहीं
रक़ीब जीत गये ख़त्म हो चुकी है जंग
हज़ार लब से ज़मीं कह रही है क़िस्सः-ए-दर्द
हज़ार गोशे-जुनू सुन रहे हैं अफ़साना

दिलों में शो'ला-ए-ग़म बुझ गया है क्या कीजे
कोई हसीन नहीं किससे अब वफ़ा कीजे
सिवाय इसके कि क़ातिल ही को दुआ दीजे

मगर ये जंग नहीं वो जो ख़त्म हो जाए
इक इन्तिहा है फ़क़त हुस्ने-इब्तिदा के लिए
बिछे हैं ख़ार कि गुज़रेंगे क़ाफ़िले गुल के
ख़मोशी मुहर-ब-लब[4] है किसी सदा के लिए
उदासियाँ हैं ये सब नग़मःओ-नवा[5] के लिए

वो पहना शमअ़ ने फिर ख़ूने-आफ़ताब का ताज
सितारे ले के उठे नूरे-आफ़ताब के जाम

---

1. सवेरे या शाम के समय क्षितिज की लालिमा, 2. क्षितिज, 3. चेतना या एहसास का अभाव, 4. स्तब्ध, मौन, 5. गीत और स्वर।

पलक-पलक पे फ़ुरोज़ाँ[1] हैं आँसुओं के चिराग़
लवें चमकती हैं या बिजलियाँ चमकती हैं
तमाम पैरहने-शब में भर गये हैं शरार

चटक रही हैं कहीं तीरगी की दीवारें
लचक रही हैं कहीं शाख़े-गुल की तलवारें
सनक रही है कहीं दश्ते-सरकशी में हवा
चहक रही है कहीं बुलबुले-बहारे-नवा
महक रहा है वफ़ा के चमन में दिल का गुलाब
छलक रही है लबो-आरिज़ो-नज़र की शराब

जवान ख़्वाबों के जंगल से आ रही है नसीम
नफ़स में नक्हते-पैग़ामे-इन्क़िलाब[2] लिये
ख़बर है क़ाफ़िलः-ए-रंगो-नूर निकलेगा
सहर के दोश[3] पे इक ताज़ा आफ़ताब लिये

1. आलोकित, 2. इन्क़िलाव के पैग़ाम की ख़ुशबू, 3. कन्धा।

सरे तूर

(आस्माँ-परवाज़ों के नाम)

"क्या फ़र्ज़ है कि सबको मिले एक-सा जवाब
आओ न हम भी सैर करें कोहे-तूर की"
—ग़ालिब

दिल को बेताब रखती है इक आरज़ू
कम है ये वुसअ़ते[1]-आ़लमे-रंगो-बू
ले चली है किधर फिर नयी जुस्तुजू
ता-ब-हद्दे-नज़र[2] उड़ के जाते हैं हम
वो जो हाइल थे राहों में शम्सो-क़मर
हमसफ़र उनको अपना बनाते हैं हम

है ज़मीं पर्दः-ए-लालः-ओ-नस्तरन
आस्माँ पर्दः-ए-कहकशाँ है अभी
राज़े-फ़ितरत हुआ लाख हम पर अ़याँ
राज़े-फ़ितरत निहाँ का निहाँ है अभी
जिसकी सदियों उधर हमने की इब्तिदा
नातमाम अपनी वो दास्ताँ है अभी
मंज़िलें उड़ गयीं बन के गर्दे-सफ़र
रहगुज़ारों ही में कारवाँ है अभी
पी के नाकामियों की शराबे-कुहन
अपना ज़ौक़े-तजस्सुस[3] जवाँ है अभी

हाथ काटे गये जुर्अते-शौक़ पर
ख़ू-चिकां हो के वो गुलफ़िशाँ हो गये
हैरतों ने लगाई जो मुह्रे-सुकूत

---

1. संसार का विस्तार, 2. दृष्टि की अन्तिम सीमा तक, 3. जिज्ञासा।

लब ख़मोशी में जादू-बयाँ हो गये
रास्ते में जो कुहसार आये तो हम
ऐसे तड़पे कि सैले-रवाँ हो गये
हैं अज़ल से ज़मीं के कुर्रे पर असीर
हो के महदूद हम बेकराँ हो गये
ज़ौक़े-परवाज़ भी दिल की इक जस्त है
ख़ाक से ज़ीनते-आस्माँ हो गये

अक़्ले-चालाक ने दी है आकर ख़बर
इक शबिस्ताँ है ऐवाने-महताब में
मुन्तज़िर हैं निगाराने-आतिश-बदन
जगमगाती फ़ज़ाओं की मेहराब में
कितने दिलकश हसीं ख़्वाब बेदार हैं
माहो-मिर्‌रीख़[1] की चश्मे-बेख़्वाब में
खींच फिर ज़ुल्फ़े-माशूक़ः ए-नीलगूँ
ले ले शो'ले को फिर दस्ते-बेताब में

मुज़्दः हो महजबीनाने-अफ़लाक को
बज़्मे-गेती[2] का साहिबे-नज़र आ गया
तहनियत हुस्न को बेनक़ाबी की दो
दीदा-वर आ गया, पर्दा-दर आ गया
आस्माँ से गिरा था जो कल टूट कर
वो सितारा बदोशे-क़मर आ गया
ले के पैमानए-दर्दे-दिल हाथ में
मल के चेहरे पे ख़ूने-जिगर आ गया
बज़्मे-सय्यारगाने-फ़लक-सैर में
इक हुनरमन्द सय्यारा-गर आ गया

शौक़ की हद मगर चाँद तक तो नहीं
है अभी रिफ़अते-आस्माँ और भी
है सुरय्या के पीछे सुरय्या रवाँ
कहकशाँ से परे, कहकशाँ और भी
झाँकती हैं फ़ज़ाओं के पेचाक से
रंग और नूर की वादियाँ और भी

---

1. चाँद और तारे, 2. धरती की महफ़िल।

और भी मंज़िलें, और भी मुश्किलें
हैं अभी इश्क़ के इम्तिहाँ और भी

आज दस्ते-जुनूँ पर है शम्ए-ख़िरद[1]
दोजहाँ जिसके शो'ले से मा'मूर हैं
लेके आएँ पयामे-तुलू'-ए-सहर
जितने सूरज ख़लाओं में मस्तूर हैं
कह दो बर्क़े-तजल्ली[2] से हो जलवागर
आज मूसा नहीं हम सरे-तूर हैं

---

1. बुद्धि रूपी दीपक, 2. वह प्रकाश जिसे तूर पर हज़रत मूसा ने देखा था।

पैराहन-ए-शरर

खड़ा है कौन पैराहन-ए-शरर[1] पहने
बदन है चूर तो माथे से ख़ून जारी है
ज़माना गुज़रा कि फ़रहादो-क़ैस ख़त्म हुए
यह किस पे अहले-जहाँ, हुकमे-संगबारी है
यहाँ तो कोई भी शीरीं-अदा निगार नहीं
यहाँ तो कोई भी लैला-बदन बहार नहीं
यह किसके नाम पे ज़ख़्मों की लाल-कारी है

कोई दिवाना है, लेता है सच का नाम अब तक
फ़रेबो-मक्र[2] को करता नहीं सलाम अब तक
है बात साफ़ सज़ा उसकी संगसारी[3] है

---

1. चिनगारी का परिधान, 2. छल-छद्म, 3. दण्ड का विधान, जिसके अनुसार अपराधी को पत्थर मारे जाते हैं।

एक बात

इस पे भूले हो कि हर दिल को कुचल डाला है
इस पे फूले हो कि हर गुल को मसल डाला है
और हर गोशःए-गुलज़ार[1] में सन्नाटा है
किसी सीने में मगर एक फ़ुग़ाँ[2] तो होगी
आज वह कुछ न सही कल को जवाँ तो होगी

वह जवाँ होके अगर शोलः-ए-जव्वाला बनी
वह जवाँ होके अगर आतिशे-सद-साला[3] बनी
ख़ुद ही सोचो कि सितमगारों पे क्या गुज़रेगी

---

1. उपवन का कोना, 2. आर्तनाद, 3. सौ वर्ष वाली अग्नि।

निवाला

माँ है रेशम के कारख़ाने में
बाप मसरूफ़[1] सूती मिल में है
कोख से माँ की जब से निकला है
बच्चा खोली के काले दिल में है
जब यहाँ से निकल के जाएगा
कारख़ानों के काम आएगा
अपने मजबूर पेट की ख़ातिर
भूक सरमाये की बढ़ायेगा
हाथ सोने के फूल उगलेंगे
जिस्म चाँदी का धन लुटाएगा
खिड़कियाँ होंगी बैंक की रौशन
ख़ून उसका दिये जलाएगा
यह जो नन्हा है भोला-भाला है
सिर्फ़ सरमाये का निवाला है
पूछती है यह उसकी ख़ामोशी
कोई मुझको बचाने वाला है

---

1. व्यस्त।

दो चिराग़

तीरगी के सियाह ग़ारों से
शहपरों की सदाएँ आती हैं
ले के झोंकों की तेज़ तलवारें
ठण्डी-ठण्डी हवाएँ आती हैं
बर्फ़ ने जिन पे धार रक्खी है

एक मैली दुकान तीरः-ओ-तार
इक चिराग़ और एक दोशीज़ा
वोह बुझी-सी है वह उदास-सा है
दोनों जाड़ों की लम्बी रातों में
तीरगी और हवा से लड़ते हैं
तीरगी उठ रही है मैदाँ से
फ़ौज-दर-फ़ौज बादलों की तरह
और हवाओं के हाथ में गुस्ताख़
तोड़े लेते हैं नन्हे शो'ले को
भींचे लेते हैं मैले आँचल को
लड़की रह-रह के जिस्म ढाँपती है
शो'ला रह-रह के थरथराता है
नंगी बूढ़ी ज़मीन काँपती है

तीरगी अब सियह समन्दर है
और हवा हो गयी है दीवानी
या तो दोनों चिराग़ गुल होंगे
या करेंगे वो शो'ला-अफ़शानी[1]
फूँक डालेंगे तीरगी की मता'[2]

पर मुझे एतिमाद है इन पर
गो ग़रीब और बेज़बान-से हैं
दोनों हैं आग दोनों हैं शो'ला
दोनों बिजली के ख़ानदान से हैं

---

1. अंगारे बरसाना, 2. अन्धकार की सत्ता (सम्पत्ति)।

दो शे'र

यह है आरज़ू चमन की, कोई लूट ले चमन को
ये तमाम रंगो-नक्हत तिरे इख़्तियार में है

तिरे हाथ की बलन्दी में फ़रोग़े-कहकशाँ है
ये हुजूमे-माहो-अंजुम[1] तिरे इन्तिज़ार में है

1. चाँद और तारों का जमघट।

सुब्ह-ए-फ़र्दा[1]

इसी सरहद पे कल डूबा था सूरज हो के दो टुकड़े
इसी सरहद पे कल ज़ख़्मी हुई थी सुब्हे-आज़ादी
यह सरहद ख़ून की, अश्कों की, आहों की, शरारों की
जहाँ बोयी थी नफ़रत और तलवारें उगायी थीं

यहाँ महबूब आँखों के सितारे तिलमिलाये थे
यहाँ माशूक़ चेहरे आँसुओं में झिलमिलाये थे
यहाँ बेटों से माँ, प्यारी बहन भाई से बिछड़ी थी

यह सरहद जो लहू पीती है और शो'ले उगलती है
हमारी ख़ाक की सरहद पे नागिन बनके चलती है
सजाकर जंग के हथियार मैदाँ में निकलती है
मैं इस सरहद पे कब से मुन्तज़िर हूँ सुब्ह-ए-फ़र्दा का

2

यह सरहद फूल की, खुशबू की, रंगों की, बहारों की
धनक की तरह हँसती, नदियों की तरह बल खाती
वतन के आरिज़ों[2] पर ज़ुल्फ़ की मानिन्द लहराती
महकती, जगमगाती, इक दुलहन की माँग की सूरत
कि जो बालों को दो हिस्सों में तक़सीम करती है
मगर सिन्दूर की तलवार से, सन्दल की उँगली से

यह सरहद दिलबरों की, आशिक़ों की, बेक़रारों की
यह सरहद दोस्तों की, भाइयों की, ग़मगुसारों की
सहर को आये ख़ुरशीदे-दरख़्शाँ पासबाँ बनकर
निगहबानी हो शब को आसमाँ के चाँद तारों की
ज़मीं पामाल हो जाए, भरे खेतों की यूरिश से

---

1. आनेवाले कल की सुबह, 2. कपाले।

सिपाहें हमलाआवर हों दरख़्तों की क़तारों की
ख़ुदा महफ़ूज रक्खे इसको ग़ैरों की निगाहों से
पड़ें नज़रें न इस पर ख़ूँ के ताजिर ताजदारों की
महब्बत हुक्मराँ हो, हुस्न क़ातिल, दिल मसीहा हो
चमन पे आग बरसे शोलः-पैकर[1] गुलइज़ारों की
वो दिन आये कि नफ़रत हो के आँसूदिल से बह आये
वो दिन आये यह सरहद बोसा-ए-लब बनके रह जाये

3

यह सरहद मनचलों की, दिलजलों की, जाँनिसारों की
यह सरहद सरज़मीने-दिल के बाँके शहसवारों की
यह सरहद कजकुलाहों[2] की, यह सरहद कजअदाओं की
यह सरहद गुलशने-लाहौरो-दिल्ली की हवाओं की
यह सरहद अम्नो-आज़ादी के दिलअफ़रोज़ ख़्वाबों की
यह सरहद डूबते तारों, उभरते आफ़ताबों की
यह सरहद ख़ूँ में लिथड़े प्यार के ज़ख़्मी गुलाबों की
मैं इस सरहद पे कब से मुन्तज़िर हूँ सुब्हे-फ़र्दा का

---

1. अंगारे की भाँति देह वाला, 2. तिरछी टोपी लगाने वाले।

ताशक़न्द की शाम

मनाओ जश्ने-महब्बत कि ख़ूँ की बू न रही
बरस के खुल गये बारूद के सियह बादल
बुझी-बुझी-सी है जंगों की आख़िरी बिजली
महक रही है गुलाबों से ताशक़न्द की शाम

जगाओ गेसूए-जानाँ की अम्बरीं रातें
जलाओ साअ़दे-सीमीं की शम्ए-काफ़ूरी
तवील बोसों के गुलरंग जाम छलकाओ

यह सुर्ख़ जाम है ख़ूबाने-ताशक़न्द के नाम
यह सब्ज़ जाम है लाहौर के हसीनों का
सफ़ेद जाम है दिल्ली के दिलबरों के लिए
घुला है जिसमें महब्बत के आफ़ताब का रंग

खिली हुई है उफ़ुक़ पर धनक तबस्सुम की
नसीमे-शौक़ चली है जाँफ़िज़ा तकल्लुम[1] की
लबों की शो'लाफ़िशानी है शबनम-अफ़्शानी
इसमें सुब्हे-तमन्ना नहाके निखरेगी

किसी की ज़ुल्फ न अब शामे-ग़म में बिखरेगी
जवान ख़ौफ़ की वादी से अब न गुज़रेंगे
जियाले मौत के साहिल पे अब न उतरेंगे
भरी न जाएगी अब ख़ाको-ख़ूँ से माँग कभी
मिलेगी माँ को न मर्गे-पिसर[2] की ख़ुशख़बरी

खिलेंगे फूल बहुत सरहदे-तमन्ना पर
ख़बर न होगी यह नर्गिस है किसकी आँखों की

---

1. वार्ता, 2. बेटे की मृत्यु।

यह गुल है किसकी जबीं किसका लब है यह लालः
यह शाख़ किसके जवाँ बाज़ुओं की अँगड़ाई

बस इतना होगा यह धरती है, शहसवारों की
जहाने-हुस्न के गुमनाम ताजदारों की
यह सरज़मीं है महब्बत के ख़्वास्तगारों[1] की
जो गुल पे मरते थे शबनम से प्यार करते थे
ख़ुदा करे कि यह शबनम यूँ ही बरसती रहे
ज़मीं हमेशा लहू के लिए तरसती रहे

1. इच्छुक, चाहने वाले।

गुफ़्तगू

गुफ़्तगू बन्द न हो
बात से बात चले
सुब्ह तक शामे-मुलाक़ात चले
हम पे हँसती हुई ये तारों भरी रात चले

हों जो अलफ़ाज़ के हाथों में हैं संगे-दुश्नाम
तंज़ छलकाये तो छलकाया करे ज़हर के जाम
तीखी नज़रें हों तुर्श अबरुए-ख़मदार[1] रहें
बन पड़े जैसे भी दिल सीनों में बेदार रहें
बेबसी हर्फ़ को ज़ंजीर-ब-पा[2] कर न सके
कोई क़ातिल हो मगर क़त्ले-नवा कर न सके

सुब्ह तक ढल के कोई हर्फ़े-वफ़ा आएगा
इश्क़ आयेगा बसद लग़ज़िशे-पा[3] आएगा
नज़रें झुक जाएँगी, दिल धड़केंगे, लब काँपेंगे
ख़ामुशी बोसः ए-लब बनके महक जाएगी
सिर्फ़ गुंचों के चटकने की सदा आएगी

और फिर हर्फ़ो-ओ-नवा की न ज़रूरत होगी
चश्मो-अबरू के इशारों में महब्बत होगी
नफ़रत उठ जायेगी, मेहमान मुरव्वत होगी

हाथ में हाथ लिये सारा जहाँ साथ लिये
तोहफ़ःए-दर्द लिये प्यार की सौग़ात लिये
रहगुज़ारों से अदावत के गुज़र जाएँगे
ख़ूँ के दरयाओं से हम पार उतर जाएँगे

गुफ़्तगू बन्द न हो
बात से बात चले
सुब्ह तक शामे-मुलाक़ात चले
हम पे हँसती हुई ये तारों भरी रात चले

---

1. तिरछी भवें, 2. पैर में ज़ंरीर बाँधना, 3. पैरों का कम्पन।

क़त्आ

दौरे-मय ख़त्म हुआ, ख़त्म हुई सुह्बते-शब[1]
हो चुकी सुब्ह मगर रात अभी बाक़ी है
ऐसा लगता है कि बिछड़ी है अभी मिलके नज़र
ऐसा लगता है मुलाक़ात अभी बाक़ी है

---

1. रात्रि-मिलन।

बरह्ना[1] फ़क़ीर

मिरी ज़िन्दगी, तिरी ज़िन्दगी
यह जो एक कुह्ना लबादा है
हैं कशीदा इस पे हज़ार गुल
कोई ख़ून से कोई शो'ला से
कोई अश्क से कोई आह से
कोई ख़ौफ़ और गुनाह से
कोई इक तबस्सुमे-ज़ेरे-लब
कोई हर्फ़े-नीम-निगाह से
कोई कम है याँ[2] न ज़्यादा है
मिरी ज़िन्दगी, तिरी ज़िन्दगी
यह जो एक कुह्ना लबादा है
अदम एक बरह्ना फ़क़ीर है
कि लिबास जिसका हवाएँ हैं
कि लिबास जिसका दिशाएँ हैं
कभी चाँद को वह पहनता है
कभी ढाँपता है बदन को वह
नये आफ़ताब के नूर से
कभी रंगे-गुल के हरीर से
कभी बूए-गुल के कतान से
मगर इसके बाद भी वह फ़क़ीर
यूँही घूमता है बरह्ना तन
कि क़बाए-ज़ुलमतो-नूर में
कभी छुप सका न वह बे-बदन
मिरी ज़िन्दगी, तिरी ज़िन्दगी
उसे देती है नया पैरहन
यह वुजूद हिकमते-सादा है
जो बरह्नगी-ए-अदम को रोज़
नया इक लिबास पहनाता है

---

1. निर्वस्त्र, 2. यहाँ।

कार्ल मार्क्स

'नीस्त पैग़म्बर व लेकिन दर बग़ल दारद किताब'[1]

—जामी

वह आग मार्क्स के सीने में जो हुई रौशन
वह आग सीन-ए-इन्साँ में आफ़ताब है आज
वह आग जुम्बिशे-लब जुम्बिशे-क़लम भी बनी
हर एक हर्फ़ नये अह्द की किताब है आज
ज़मानागीरो - ख़ुदआगाहो - सरकशो - बेबाक[2]
सुरूरे-नग़मा-ओ-सरमस्ती-ए-शबाब[3] है आज
हर एक आँख में रक़्साँ है कोई मंज़रे-नौ
हर एक दिल में कोई दिलनवाज़ ख़्वाब है आज
वह जलवः जिसकी तमन्ना थी चश्मे-आदम को
वह जलवः चश्मे-तमन्ना में बेनक़ाब है आज

---

1. वह पैग़म्बर नहीं लेकिन साहिब-ए-किताब है, 2. सार्वभौमिक, आत्मचेतस, स्वच्छन्द और निर्भीक, 3. यौवन के आह्लाद का उन्माद।

पॉल रोबसन

अपने नग़मे पे कोई नाज़ तुझे हो कि न हो
नग़मा इस बात पे नाज़ाँ है कि है फ़न तेरा
देस हैं दूर बहुत दिल तो बहुत दूर नहीं
मेरे गुलशन ही के पहलू में है गुलशन तेरा
तेरे नग़मे ने लिया देहली-ओ-शीराज़ का दिल
मॉस्को तेरा है ग़रनाता-ओ-लन्दन तेरा
अपनी पलकों से चुना ख़ूने-शहीदाने-हबश
कितने गुलज़ारों से गुलरंग है दामन तेरा
तेरी आवाज़ बिलाले-हबशी[1] की है नवा
नूर से दिल के तिरे हर्फ़ है रौशन तेरा
बूए-गुल रह न सकी क़ैद-ए-गुलिस्ताँ में असीर
सरहदें तोड़ के सब फैल गया फ़न तेरा
कृश्न का गीत है, गोकुल की हसीं शाम है तू
आ कलेजे से लगा लें कि सियह फ़ाम है तू

नोट : यह नज़्म मॉस्को में पॉल रोबसन से मुलाक़ात के बाद कही गयी।

1. बिलाल नामक हबशी ने हज़रत मुहम्मद साहब के कहने पर मक्का के बुतों की पूजा करने से इनकार कर दिया था।

एक शे'र

तीरगी[1] फिर ख़ूने-इन्साँ की क़बा[2] पहने हुए
दे रही है सुब्हे-नौ का कमनिगाहों को फ़रेब

---

1. अन्धकार, 2. गाउन।

एक शे'र

कमज़र्फ़ी-ए-गुफ़्तार है दुश्नाम-तराज़ी
तहज़ीब तो शाइस्तगी-ए-दीदए-तर[1] है

1. नम आँखों की शालीनता।

एक शे’र

अपनी बेबाक निगाहों में समाया न कोई
और वह हैं कि हर इक ताज़ा ख़ुदा से ख़ुश हैं

ग़ज़ल

सितारों के पयाम आये बहारों के सलाम आये
हज़ारों नामा आये शौक़ मेरे दिल के नाम आये
न जाने कितनी नज़रें इस दिले-वहशी पे पड़ती हैं
हर इक को फ़िक्र है इसकी, ये शाहीं ज़ेरे-दाम आये
इसी उम्मीद में बेताबी-ए-जाँ बढ़ती जाती है
सुकूने-दिल जहाँ मुमकिन हो शायद वो मुक़ाम आये
हमारी तश्नगी बुझती नहीं शबनम के क़तरों से
जिसे साक़ीगरी की शर्म हो आतिश-ब-जाम आये
इन्हीं राहों में शैख़ो-मुह्तसिब[1] हाइल रहे अक्सर
इन्हीं राहों में हूराने-बिहिश्ती के ख़याम[2] आये
निगाहें मुंतज़िर हैं एक ख़ुर्शीदे-तमन्ना की
अभी तक जितने मिहरो-माह आये नातमाम आये
ये आलम लज़्ज़ते-तख़्लीक़ का है रक़्से-लाफ़ानी
तसव्वुर ख़ानए-हैरत में लाखों सुब्हो-शाम आये
कोई 'सरदार' कब था इससे पहले तेरी महफ़िल में
बहुत अहले-सुख़न[3] उट्ठे बहुत अहले-कलाम आये

---

1. उपदेशक, 2. ख़ेमे का बहुवचन, 3. रचनाकार, कवि, लेखक।

खण्ड : दो

1978-98 की अवधि की कविताएँ

नवम्बर, मेरा गहवारा

(आप बीती और जग बीती)

रक़्से-तख़्लीक़[1]

जब कहीं फूल हँसे
जब कोई तिफ़्ल सरे-राह मिले
रात की शाख़े-सियह-रंग पे जब चाँद खिले
दिल ये कहता है हसीं है दुनिया
चीथड़ों ही में सही माह-ज़बीं है दुनिया
दस्ते-सैयाद भी है बाज़ुए-जल्लाद भी है
रक़्से-तख़्लीक़े-ज़हाने-गुज़राँ जारी है

खोल आँख, ज़मीं देख, फ़लक देख, फ़ज़ा देख

नवम्बर, मेरा गहवारा है, ये मेरा महीना है
इसी माहे-मुनव्वर[2] में
मिरी आँखों ने पहली बार सूरज की सुनहरी रौशनी देखी
मिरे कानों में पहली बार इन्सानी सदा आयी
मिरे तारे-नफ़स में जुम्बिशे-बादे-सबा आयी
मशामे-रूह में
मिट्टी की ख़ुशबू फूल बनकर मुस्कुरा उट्ठी
लहू ने गीत गाया
शम्ए-हस्ती जगमगा उट्ठी
यह लम्हा-लम्हःए-मीलादे-आदम था

मैं सत्तर साल पहले इस तमाशगाहे-आलम में
इक आफ़ाक़ी[3] खिलौना था।
हवा के हाथ सहलाते थे मेरे नर्म बालों को
मिरी आँखों में रातें नींद का काजल लगाती थीं

---

1. सृष्टि का नृत्य, 2. उजालों से भरा हुआ महीना, 3. आकाशीय।

सहर की पहली किरनें चूमती थीं मेरी पलकों को
मुझे चाँद और तारे मुस्कुराकर देखते थे
मौसमों की ग़र्दिशें झूला झुलाती थीं
भरी बरसात में बारिश के छींटे
गर्मियों में लू के झोंके
मुझसे मिलने के लिए आते
वो कहते थे हमारे साथ आओ
चल के खेलें बाग़ो-सहरा
मिरी माँ अपने आँचल में छुपा लेती थी नन्हे से खिलौने को
मिरी हैरत की आँखें
उस महब्बत से भरे चेहरे को तकती थीं
जिस आईने में पहली बार मैंने
अपना चेहरा आप देखा था

वो चेहरा क्या था
सूरज था, ख़ुदा था या पयम्बर था
वो चेहरा जिससे बढ़कर ख़ूबसूरत
कोई चेहरा हो नहीं सकता
कि वो इक माँ का चेहरा था
जो अपने दिल के ख़्वाबों, प्यार की किरनों से रौशन था

वो पाक़ीज़ा मुक़द्दस सीनःए-ज़र्री[1]
वह उसमें दूध की नहरें
वह मौज़े-कौसरो-तसनीम[2] थीं
या शहदो-शबनम थीं
उन्हीं की चन्द बूँदें आज एजाज़े-सुख़न बनकर
उन्हीं की चन्द बूँदें सिह-हर्फ़ो-जादुए-लफ़्ज़ो-बयाँ[3] बनकर
मिरे होंटों से ख़ुशबू-ए-ज़बाँ बनकर
सरे-लौहो-क़लम[4] आती हैं तो शमशीर की सूरत चमकती हैं
हसीनों के लिए वह ग़ाज़ःए-रुख़सारो-आरिज़ हैं
खनकती चूड़ियों, बजती हुई पायल को इक आहंग देती हैं
ज़मीं की गर्दिशों, तारिख़ की आवाज़े-पा में ढलती जाती हैं।

---

1. स्वर्णमय, 2. स्वर्ग की नहरें, 3. भाषा और अभिव्यक्ति का जादू, 4. लिखने की तख़्ती और क़लम के ऊपर।

जो अब मेरी जबाँ है
मेरे बचपन में वह मेरी माँ की लोरी थी
यह लोरी इक अमानत है
मेरा हर शे'र अब इसकी हिफ़ाज़त की ज़मानत है

इक़राअ[1]—अल्लमा-बिलक़लम

मिरा पहला सबक इक़राअ
है तहसीने-क़लम[2] जिसमें
है तक़रीमे-क़लम जिसमें
क़लम तहरीके-रब्बानी
क़लम तख़्लीक़े-इन्सानी
क़लम तहज़ीबे-रूहानी
क़लम ही शाख़े-तूबा[3] भी है अंगुश्ते-हिनाई भी
मिरे हाथों में आकर रक़्स करती है
हज़ारों दाइरों में चाँद और सूरज की मेहराबें
दरख़शां इल्म और हिक़मत की कन्दीलें
हिलाले-नौ का सीना माहे-क़ामिल का ख़ज़ीना है

मिरी उँगली ने पहले ख़ाक़ के सीने पे हर्फ़े-अव्वलीं लिक्खा
फिर उसके बाद तख़्ती पर क़लम का नक़्शे-सानी था
क़लम अंगुश्ते-इन्सानी का जलवा है
उरूज़े-आदमे-ख़ाक़ी[4] का दिलक़श इस्तिआरा[5] है

फ़ितरत की फ़ैयाज़ियाँ

मुझे सूरज ने पाला
चाँद की किरनों ने नहलाया
हर इक शय मुझसे थी मानूस
मुझसे बात करती थी
दरख़्तों की ज़बाँ
चिड़ियों के नग़्मे मैं समझता था
हवा में तितलियाँ परवाज़ करती थीं

1. पढ़ो, 2. क़लम की प्रशंसा, 3. एक खुशबूदार पेड़, 4. नश्वर मनुष्य, 5. प्रतीक।

मैं उनके साथ उड़ता था
मिरी मुट्ठी में जुगनू जगमगाते थे
मैं परियों के परिस्तानों में जाता था
अँधेरा काँपता था बिजलियों के ताज़ियानों[1] से
मैं उस पर मुस्कराता था
गरजते बादलों से दोस्ती थी
ख़ाक पर चलते हुए कीड़ों पे बेहद प्यार आता था
हर इक शय जैसे मेरी ज़ात थी मेरी हक़ीक़त थी
अनलहक़[2] ही सदाक़त थी
हरे नीले सुनहरी सुर्ख़ अण्डे
आशियानों में परिन्दों के
वो सब मेरे खिलौने थे
मैं आफ़ाक़ी खिलौना था
मैं ख़ुद फ़ितरत था फ़ितरत मेरी हस्ती थी
इसी फ़ितरत ने मेरे ख़ूँ में लाखों बिजलियाँ भर दीं
मसें भीगीं रगो-पै में जुनूँ का बाँकपन आया
मिरे आगे नये रंगों में दुनिया का चमन आया
हर इक शमशाद-पैकर लेके फ़िर्दौसे-बदन आया

जिधर देखो उधर बर्नाइयाँ हैं
जिधर देखो उधर रानाइयाँ हैं
शफ़क़ के रंग में भीगी हुई परछाइयाँ हैं

मिरे लग्ज़ीदा[3] लग्ज़ीदा क़लम ने
एक रंगीं और ख़ुशबूदार काग़ज़ पर
बड़ी मुश्किल से रुकते-रुकते हर्फ़े-.इश्क़ लिक्खा
और किसी की बारगाहे-हुस्न में भेजा
हया की शम्अ जल उट्ठी हरीमे-दिलरुबाई में
घुमाया सर झुकाकर देर तक कंगन कलाई में

ज़िक्र उस परीवश[4] का और फिर बयाँ अपना

कहाँ से आयी हो
कौन हो तुम

---

1. कोड़े, 2. अहं ब्रह्मास्मि, 3. काँपता हुआ, 4. परी जैसे चेहरे वाला।

न गुल न ख़ुशबू
मगर तुम्हारा वुजूद ख़ुद रूहे-गुलिस्ताँ है
वो क़ायनाते-सुरूर जिसका
ख़ुद अपना सूरज है चाँद अपना
मैं क़ायनाते-सुरूर में साँस ले रहा हूँ
शकुन्तला है यहाँ न हेलन
न हीर है और न जूलियट है
फ़क़त तुम्हारे बदन का मौसम
जो मेरी नज़रों की नर्म बारिश में
रंग और नूर बन गया है
कोई नहीं तुमसे बढ़के दुनिया-ए-दिलबरी में
कोई नहीं मुझसे बढ़के दुनिया-ए-आशिक़ी में
हर एक से तुम हसीनतर हो
हर एक से मैं अज़ीमतर हूँ

❖

तुम्हारे होंटों के ख़म में जो लफ्ज़ बन रहे हैं
वो मेरे सीने में फूल की तरह खिल रहे हैं
तुम्हारी 'हाँ' इक गुलाब है ताज़ः-ओ-शिगुफ्ता
कि जिससे ऐवाने-जाँ मुअत्तर
'नहीं' भी नन्ही-सी इक कली है
जो दिल की नाज़ुक-सी शाख़ में सो रही है
ख़्वाबे-बहार बनकर
यह ख़्वाब ताबीर[1] के गुलिस्ताँ का मुन्तज़िर है
तुम्हारे दिलकश बदन के रंगों में मुज़्तरिब[2] है
तुम्हारी आँखों से झाँकता है
तुम्हारी साँसों में काँपता है
मुझे 'नहीं' की कली अता हो
कि जिससे 'हाँ' का गुलाब महके

❖

तुम्हारे शहरे-जमाल में
मेरे दिल का कासा[3]

---

1. स्वप्न की व्याख्या, 2. विकल, व्यग्र, 3. प्याला, पात्र।

भटक रहा है
तुम अपने होटों का शहद
आँखों के फूल
हाथों के चाँद दे दो
ये मुफ्लिसी की सियाह रातें वुजूद पर तंज कर रही हैं

❖

ज़मीन का रंग तुम ज़मीं का जमाल तुम हो
ज़मीं की दौलत
ज़मीं की बेटी
तुम अप्सराओं से और हूरों से पाकतर हो
कि वो तसव्वुर के आस्मानों की पुतलियाँ हैं
तमाम हुस्ने-गुमाँ के पैकर
मगर तुम उस ख़ाक की चमक हो
कि जिसकी नस-नस में
सेब, अंगूर और गेहूँ की फ़स्ल का ख़ूँ रवाँ-दवाँ है
सहर का सूरज तुम्हारे माथे को चूमता है
बदन में शबनम की रौशनी है

❖

हवाएँ जो मेरी राज़दाँ हैं
वो मेरे होटों से लफ्ज़ लेकर
तुम्हारे कानों की सीपियों में
गुहर के मानिन्द डालती हैं
मैं मुस्कराता हूँ
तुम भी हँसती हो
और दोनों
नयी तमन्नाओं के ज़ज़ीरों में घूमते हैं
न कोई महकूम[1] है न हाक़िम
न कोई क़ानून हैं न सख़्ती
बस एक ज़ंज़ीरे-लुत्फ़, शमशीरे-दिलरुबाई

---

1. शासित।

वरके-नाख़्वान्दा[1]

मैं इक वरक़ हूँ
लिखा है किसने
पढ़ा है किसने
हर इक दरख़्त इक क़लम है हर शाख़ इक क़लम है
समन्दरों की दवात
नदियों में पिघली चाँदी की रौशनाई
फ़ज़ा के सैयाल नीलगूँ से
हवाओं के हाथ लिख रहे हैं
सितारों का नूर लिख रहा है
ज़मीन का रक़्स लिख रहा है
ज़मीन की पुश्त से निकलता गुलाबी सूरज
सुनहरी किरनों से लिख रहा है
गुज़रते लम्हात अपने तीरों से लिख रहे हैं
गुज़रती तारीख़ अपने नेज़ों से लिख रही है
तमाम अहबाब लिख रहे हैं
तमाम अग़्यार लिख रहे हैं
हरीफ़ों के ख़ंज़रों पे ख़ूँ है
सियासते-मक्रो-फ़न की तलवार लिख रही है
महकते ज़ख़्मों के फूल अलफ़ाज़ बन गये हैं
तबस्सुमे-लुत्फ़े-यार का हर्फ़-हर्फ़ है गुंचः-ए-शिगुफ्ता
हदस के ख़ारों की नोक में जुम्बिशे-क़लम है
ज़बाने-दुश्नाम लिख रही है
ज़बाने-बदनाम लिख रही है
ज़बाने-नाकाम लिख रही है
मगर मिरा दिल, मिरा जुनूँ भी तो लिख रहा है
मैं इक वरक़ हूँ
तमाम एहसासे-नातमामी
मगर मुकम्मल किताब जैसे
जो पढ़ सको तो मुझे बताना कि इस सहीफ़े में क्या लिखा है

सहीफ़ः ए-कायनात[2]

ये दो वरक़ हैं
ज़मीन और आस्मान जिन पर

---

1. बिना पढ़ा हुआ पन्ना, 2. ब्रह्माण्ड रूपी पवित्र ग्रन्थ।

सहीफ़ःए-क़ायनात तहरीर हो रहा है
फ़साना हस्ती को नेस्ती का
फ़साना नेकी का और बदी का
फ़साना ज़ुल्मत का रौशनी का
सहीफ़ःए-कायनात तहरीर हो रहा है
जो कल कली थी
वो आज गुल है
जो आज गुल है
वो कल समर है

हर एक शय वक़्त की हवाओं की ज़द पे
इक शम्ए-रहगुज़र है
जो बुझ रही है
जो जल रही है
वुजूद पर नाज़ कर रही है

हवाओं के तुन्द-ओ-तेज़ झोंके
जब आँधियों का लिबास पहने
उतरते हैं गारते-चमन पर
तो शाख़े-गुल अपना सर झुकाकर सलाम करती है
और फिर सर उठा के हँसती है
और कहती है—मुझको देखो
मैं फ़ितरते-लाज़वाल का रंगे-शाइरी हूँ
वुजूद का रक़्से-दिलबरी हूँ
जिसे मिटाने की कोशिशें हैं
वो मिट सका है न मिट सकेगा
यह रंग सह्ने-चमन से उबलेगा
मक़्तलों से तुलूअ़ होगा

हर्फ़े-बद

मिरे ख़िलाफ़ उठाया क़लम हरीफ़ों[1] ने
मिरा गुरूर बढ़ा और सर बलन्द हुआ
यही सलीका है बस हर्फ़े-बद से बचने का

1. चालाक लोग।

कि अपनी ज़ात को इतनी बलन्दियाँ दे दो
किसी का संगे-मलामत वहाँ तक आ न सके
सदाए-कूए-मलामत तलाश करती रहे
मगर नवाए-बहार-आशना को पा न सके
चिरागे-इल्म-ओ-हुनर को कोई बुझा न सके

जियो तो अपने दिल-ओ-जाँ के मयकदे में जियो
खुद अपने खूने-ज़िगर की शराबे-नाब पिओ
जहाँ के सामने जब आओ ताज़ा-रू आओ
हुज़ूरे-मुहतसिब-ओ शैख़ में सुबू लाओ
जो ज़ख़्म-खुर्दा[1] है वो नग़्मःए-गुलू लाओ
दिले-शिक़स्ता में बढ़ने दो रौशनी ग़म की
ये रौशनी तो है मीरास इब्ने-आदम की
ये रौशनी कि जो तलवार भी सिपर भी है
मिरी निग़ाह में पैमानःए-हुनर भी है

हसद[2]

हसद की आँखों का रंग देखो
जो दिल के अन्दर भरे हुए हैं
वो ज़हर-आलूदा संग[3] देखो
जो हाथ में हैं वो फूल देखो
जो रूह में हैं बबूल देखो
लबों पे जो है वो हर्फ़ देखो
हकीर कितना है जर्फ़ देखो
कि दोस्त है
और दोस्त के मुँह पे बात कहने से डर रहा है
वुजूद ज़ाहिर में है मुकम्मल
मगर वो अन्दर बिखर रहा है
वह अपनी नफ़रत का ज़हर लेकर
खुद अपने ख़ूँ में उतर रहा है
वो तंगदिल भी है तंगजाँ भी

---

1. घाव खाया हुआ, 2. ईर्ष्या, 3. ज़हर में सना हुआ पत्थर।

तुनुक ज़मीर और तुनुक ज़बाँ भी
ख़बर नहीं उसको वो कहाँ है
कि हर तरफ़ एक शख़्स ऐसा नज़र के अन्दर बसा हुआ है
कि जिसके साये से काँपता है
जब अपना क़द उससे नापता है
तो अपने ख़ंजर को तोलता है
हसद का मारा हुआ यह बन्दा ग़रीबे-शहरे-दयारे-ख़ुद है
शराफ़ते-नफ़्स[1] मर चुकी है बिचारा ख़्वेश-आशना[2] नहीं है

मगर उसी दोस्त की बदौलत
मैं ख़ुद को पहचानने लगा हूँ
मैं उसका एहसान मानता हूँ
ख़ुदा करे उसका दिल कहीं से
सुकूँ की दौलत तलाश कर ले

क़ातिल की शिकस्त

इस कमींगाह[3] में हैं कितने कमाँदार बताओ
तीर कितने हैं सियह तरकश में
गिन के देखो तो ज़रा
कौन-सा तीर है मख़सूस मिरे दिल के लिए

इब्ने-मरियम को किया तुमने सरे-दार बलन्द
और वो ज़िन्दा है
तश्नगी तुमने मुहम्मद के नवासे को दी
"चश्मःए-फ़ैज़े-हुसैन इब्ने-अली जारी है"

इब्ने-मरियम न हुसैन इब्ने-अली हों लेकिन
ख़ूँ में है ख़ूने-शहादत की हरारत पिन्हाँ
वो जो सदियों से दहकता हुआ अंगारा है
और सीने में मिरे
एक नहीं, सैकड़ों-लाखों दिल हैं
वो किसी देस का दिल हो कि किसी क़ौम का दिल
वो किसी फ़र्दे-बशर का दिल हो

---

1. अस्तित्व की शालीनता, 2. स्वजनों से प्रेम करने वाला, 3. छुपकर शिकार करने वाली जगह।

ज़ख़्म-ख़ुर्दा हो कि नग़्मों से भरा
मेरे सीने में धड़कता है मिरा दिल बनकर
कितने दिल क़त्ल करोगे आख़िर
कितने जलते हुए तारों को बुझा सकते हो
कितने ख़ुर्शीदों को नेज़ों पे उठा सकते हो
"क़त्ल करते-करते ख़ुद तुमको जुनूँ हो जाएगा"

(नामुक़म्मल-ज़ेरे-तख़लीक़)

ग़ज़ल

आये हम ग़ालिब-ओ-इक़बाल के नग़्मात के बाद
मुस्हफ़े- इश्क़ो-जुनूँ हुस्न की आयात के बाद

ऐ वतन ख़ाके-वतन वो भी तुझे दे देंगे
बच गया है जो लहू अब के फ़सादात के बाद

नारे-नुमूद[1] यही और यही गुलज़ारे-ख़लील
कोई आतिश नहीं आतिशक़दः ए-ज़ात के बाद

राम-ओ-गौतम की ज़मीं हुर्मते-इन्सां की अमीं
बाँझ हो जाएगी क्या ख़ून की बरसात के बाद

हमको मालूम है वादों की हक़ीक़त क्या है
बारिशे-संगे-सितम, ज़ामे-मुदारात के बाद

तश्नगी है कि बुझाये नहीं बुझती 'सरदार'
बढ़ गयी कौसरो-तस्नीम[2] की सौगात के बाद

1. एक अत्याचारी बादशाह जिसने ख़ुदाई का दावा किया था, 2. स्वर्ग की हौज़ और नहर।

दिल और शिक़स्त-ए-दिल

वफ़ा-पैकर थी वो लेकिन, वफ़ा नाआशना निकली
वो नग़्मा थी, शिकस्ते-शीशःए-दिल की सदा निकली

चरागे-लालः ए-सहरा की सूरत दिल में रौशन थी
मगर पल भर में सहराओं की बेपर्वा हवा निकली

बहुत बेबाक आना था, बहुत दुज़्दाना जाना था
ये मेरे दिल की धड़कन भी वही आवाज़े-पा निकली

वफ़ा कैसी, कहाँ की बेवफ़ाई, इश्क़ की मंज़िल
थी मक़्तलगाह जिसमें हुस्न की तेग़े-अदा निकली

ये सारा खेल था जो वक़्त के शातिर ने खेला था
न कुछ उसकी ख़ता निकली, न कुछ अपनी ख़ता निकली

कोई मंज़िल नहीं आवारःए-कूए तमन्ना की
नयी खुशबूए-पैराहन लिये बादे-सबा निकली

निगारे-आतशीं-रुख़ और कोई आनेवाला है
दिले-वीराँ की तारीकी में हलका-सा उजाला है

कोई तो ज़ख़्मे-दिल पर मर्हमे-मेहरो-वफ़ा रक्खे
कोई तो दर्द के रुख़सार पर दस्ते-शिफ़ा[1] रक्खे

फिर वही मेहरो मुरव्वत फिर वही शौक़े फ़ुज़ूल
फिर वही सहराए-दर्द और दर्द के सहरा का फूल

---

1. सद्भाव एवं आत्मीयता का हाथ।

न कोई उसकी तरह है न वो किसी की तरह
करिश्मा हुस्न का हाफ़िज़ की शाइरी की तरह

तमाम शहदे-विसालो-तमाम ज़हरे-फ़िराक़
वो नौबहारे-तमन्ना है ज़िन्दगी की तरह

ये मेरा .इश्क़ कि उसके बदन का शो'ला है
ये उसका हुस्न, कि है मेरी तश्नगी की तरह

मिले तो ऐसे मिले जैसे दोस्त बरसों के
छुटे तो ऐसे, कि लगते हैं अजनबी की तरह

चुराया जिसने, कोई साहिबे-नज़र होगा
चमक रही थी वो हीरे की रौशनी की तरह

चमन में रूह के तितली की तरह आयी थी
और अब गयी है तो सावन की चाँदनी की तरह

तमाम कैफ़ियते-ज़िस्मो-जाँ तमाम हुई
किसी का प्यार नहीं उसकी दिलबरी की तरह

'चमक रहा था मिज़ा[1] पर सितारःए-सहरी'[2]
उदास वो भी थी 'सरदार जाफ़री' की तरह

---

1. पलक, 2. भोर का तारा।

ख़्वाब-ए-परीशाँ

मेरे दुश्मन की बेटी थी वो
उसकी राहों में बारूद थी
फ़र्शे-मख़मल न था
आग के पेड़ थे
और शाख़ों में अंगारों के फूल थे
सर पे मेरे वतन के जहाज़
और दुश्मन के तय्यारे मसरूफ़े-पैकार थे
आसमाँ से क़यामत बरसने लगी

उसको मालूम था उसके दुश्मन का बेटा हूँ मैं
मुझको मालूम था मेरे दुश्मन की बेटी है वो
उसकी आँखों में मासूमियत, ख़ौफ़ और बेबसी थी
और उस ख़ौफ़ के गहरे गारों में
हर चीज़ गुम हो चुकी थी
रहनुमाओं की तक़रीरें
अहले-सियासत के दीवानापन के बयानात
अख़बारों के इक़्तिबासात[1]
हथियारों के ताजिरों के जुनूँख़ेज़ एलान
रॉकेटों की सदा और तय्यारों[2] की घनगरज
कुछ न था
सिर्फ़ एक दिल धड़कने की आवाज़ थी
दो दिलों की वो आवाज़ जो एक दिल बन गये थे
हाथ से हाथ मस होने की
जिस्म से जिस्म छूने की आवाज़
और हम दोनों
बेताब साँसों के बेरब्त-से साएबाँ[3] के तले
ख़ौफ़ के ग़ार में

---

1. गद्यांश, 2. वायुयान, 3. छाँव की जगह।

सब बलाओं से महफ़ूज़ थे
उसका सारा बदन प्यार ही प्यार था
मेरा सारा बदन हुस्न ही हुस्न था
इक नदी थी जो ख़ामोशी से बह रही थी
कोंपलें हँस रही थीं
फूल ख़ामोशी से खिल रहे थे
और दुश्मन की सरहद की ठण्डी हवाएँ
और मेरे वतन की महकती हवाएँ
गले मिल रही थीं
उनको परवाना-ए-राहदारी[1] की कोई ज़रूरत न थी

रक़्से-इबलीस[2]

और इतने में ज़र्रात फटने लगे
और हर ज़र्रे के दिल से ख़ुर्शीद का ख़ून उबलने लगा
नूर ने नार की शक़्ल में
सारे जिन्नात, सारे शयातीन के पाँव की बेड़ियाँ काट दीं
और फ़ज़ाओं में ज़हरीले सूरज बरसने लगे
फिर ख़लाओं में सूरज बरसते रहे
एक सूरज में लाखों जहन्नम
हर तरफ़ रक़्से-इबलीस था
रक़्से-इबलीस का देखनेवाला कोई न था
हर तरफ़ उसकी आवाज़ थी
जैसे इक आतशीं क़हक़हा
कोई भी सुननेवाला न था
बस ख़ुदा, इक ख़ुदा
वहदहू-लाशरीक

रक़्से-इबलीस के बाद

इमारतें उड़ गयीं फ़ज़ा में
पहाड़ धुनकी हुई रुई के दहकते गाले
जो अपने शो'लों से आसमानों को चाटते हैं
ख़लाओं की आतशीं हवाएँ[3]

---

1. पासपोर्ट, 2. शैतान का नाच, 3. Solar Winds।

जो क़ल्बे-ख़ुर्शीद में पली हैं
गुरूर से रक़्स कर रही हैं
ज़मीन वीरान हो चुकी है
न तोतले इश्क़ हैं न माँओं की उँगलियाँ हैं
न नन्हे-नन्हे हसीन कीड़े
न बुलबुलें हैं न कोयलें हैं
ज़मीन इक आग का कुर्रा है
दरख़्त हैं आग के
हवा आग की है
और आग का समन्दर
न कोई सरमायादार बाक़ी
न कोई मज़दूर रह गया है
न अब कोई इन्क़िलाब होगा
न कोई ताबीर और न कोई
हसीनो-दीवाना ख़्वाब होगा
न शाम होगी न जाम होगा
न दिल के सह्ने-हसीं में कोई हसीन मह्वे-ख़िराम[1] होगा

हर एक शय आग बन चुकी है
जहन्नमों में बदल चुकी है
जो अस्लिहा बेचते थे
वो सब हैं नज़्रे-आतश
जिन्हें थी हथियारों से महब्बत
वो नज़्रे-आतश
जिन्हें थी हथियारों से अदावत
वो नज़्रे-आतश
जो क़त्ल करते थे नज़्रे-आतश
जो क़त्ल होते थे नज़्रे-आतश

हज़ारहा[2] साल बाद अगर फिर ज़मीं बनेगी
न जाने कैसा निज़ाम होगा
ख़बर नहीं क्या वहाँ बशर का भी नाम होगा

---

1. धीमे-धीमे चलता हुआ, 2. हज़ार का बहुवचन।

सुनो इक आवाज़ आसमानों से आ रही है
निज़ामे-शम्सी[1] उदास है
उसका एक सय्यारा खो गया है
जो वुसअते-क़ाइनात का शोख़ो-शंग नीलम था[2]
अश्क बनकर टपक गया है

ये ख़ित्तःए-ज़मूहरीर जिस पर करोड़ों सदियाँ गुज़र चुकी हैं
करोड़ों नूरी बरस[3] जहाँ अपना सारा मफ़हूम खो चुके हैं[4]
बिसाते-रक़्क़ासःए-फ़लक था
ज़मीं की नीलम परी का मस्कन
और उसके अतराफ़ कहकशाओं के सिलसिले थे
तमाम सय्यारों से मुक़द्दस
पयम्बरों की ज़मीं
आयाते-आसमानी की जो अमीं थी
वह नफ़अखोरों की शैतनत से शिकस्त खाकर
ख़ला में रूपोश हो गयी है

ख़्वाबे-परीशाँ

ये ख़्वाब ख़्वाबे-परेशाँ था और कुछ भी न था
बशर ने रोक दिया दस्त-जुल्मो-जुल्मत को
ज़मीन अब भी दरख़्शाँ है अब भी रक़्साँ है
फिर आरज़ू के चिरागों से दिल फ़ुरोज़ाँ है
वो ख़ौफ़ो-दर्द के गारों से आफ़ताब आये
वो हुस्नो-इश्क़ के रंगीन माहताब आये
वो बोसा-बोसा चमन-दर-चमन गुलाब आये

---

1. सौरमण्डल, 2. अन्तरिक्ष यात्रियों का कहना है कि अन्तरिक्ष से पृथ्वी एक नीले रंग के सितारे की तरह दिखाई देती है, 3. प्रकाशवर्ष, 4. अन्तरिक्ष में समय का हिसाब सूरज के गिर्द पृथ्वी की परिक्रमा से नहीं होता बल्कि प्रकाश की गति से होता है।

आबला-पा

काँटों की ज़बाँ सूख गयी प्यास से या रब
इक आबला-पा वादि-ए-पुरख़ार में आवे
—ग़ालिब

साये में दरख़्तों के
बैठे हुए इन्सानो
ऐ वक़्त के मेहमानो
किस देस से आये हो
किस देस को जाना है
ऐ सोख़्ता-सामानो

ये वुस्अते-मैदाँ है
या दर्द का सहरा है
इक धूप का जंगल है
या प्यास का दरिया है
दरिया के परे क्या है
पत्थर है कि चश्मा है
नग़्मा है कि नालः है
शबनम है कि शो'ला है
शायद कोई साहिर है
जो डूबते सूरज के
दरवाज़े पे बैठा है
अफ़्सूने-तमाशा है

2

हे रात की राहों में
तारों का सफ़र जारी
और बादे-बियाबानी

सरमस्तो-ग़ज़ल-ख़्वाँ है
हर ज़र्रे के सीने में
इक शमूअ फ़ुरोज़ाँ है
हर ख़ार के नेज़े पर
ख़्वाबों का गुलिस्ताँ है

3

ऐ इश्क़ जुनूँ-पेशा
उस सिम्त ही चलना है
डूबा है जहाँ सूरज
निकला है जहाँ सूरज
वाँ रेत के टीले पर
या नाकः ए-लैला है
या महमिले-सलमा है

4

सद-क़ाफ़िला पिन्हाँ है
सद-क़ाफ़िला पैदा है
आवाज़े-जरस[1] लेकिन
इस दश्त में तन्हा है
सदियों से इसी सूरत
है हुक़्मे-सफ़र जारी
फ़र्माने-सितम जारी
एलाने-करम जारी

5

फूलों के कटोरों में
शबनम की गुलाबी[2] है
और बादे-सहरगाही

---

1. घण्टे की आवाज़, 2. नोट : गुलाबी उस पात्र को कहते हैं जिसमें शराब रखी जाती है—मैंने शराब के अर्थ में प्रयोग किया है।

बदमस्त शराबी है
कल सुबह के दामन में
तुम होगे न हम होंगे
बस रेत के सीने पर
कुछ नक़्शे-क़दम होंगे
साये में दरख़्तों के
फिर लोग बहम होंगे

किस देस से आये हो
किस देस को जाना है
ऐ वक़्त के मेहमानो
ऐ शम्ए-तमन्ना पर
जलते हुए परवानो
ऐ सोख़्ता-सामानो!

ग़ज़ल

ये बेकसो-बेक़रार चेहरे
सदियों के ये सोगवार चेहरे
मिट्टी में पड़े दमक रहे हैं
हीरों की तरह हज़ार चेहरे
ले जाके इन्हें कहाँ सजाएँ
ये भूक के शाहकार[1] चेहरे
अफ़्रिक़ा-ओ-एशिया की ज़ीनत
ये नादिरे-रोज़गार[2] चेहरे
माज़ी के खण्डर की तरह दिलकश
ये शम्ए-सरे-मज़ार चेहरे
खोयी हुई अज़्मतों के वारिस
कल रात के यादगार चेहरे
गाज़े से सफ़ेद मय से रंगीं
इस दौर के दाग़दार चेहरे
फ़ीके हैं फ़रोगे-जर के बावस्फ़
ताबिन्दा हैं ख़ाक़सार चेहरे
गुज़रे हैं निगाहो-दिल से होकर
हर तरह के बेशुमार चेहरे
मग़रूर अना के घोंसलों में
बैठ हुए कमइयार[3] चेहरे
नाक़ाबिले-इल्तिफ़ात[4] आँखें
नाक़ाबिले-ऐतिबार[5] चेहरे
शुहरत[6] के बलन्द आस्माँ पर
छुटते हुए-से अनार चेहरे
पल भर में धुआँ-धुआँ मगर सब
पल भर में फ़क़त गुबार चेहरे

---

1. भूख की सर्वोत्तम कृति, 2. दुनिया भर में सबसे श्रेष्ठ, 3. ख़राब व्यक्ति, 4. उपेक्षा करने योग्य, 5. अविश्सनीय, 6. ख्याति।

सोने का चढ़ा है पानी
पीतल के ये शानदार चेहरे
पहने हैं नक़ाबे-पारसाई
जन्नत के क़िरायादार चेहरे
इन सब से मगर हसीनतर हैं
रिन्दों के गुनाहगार चेहरे
हँसते हुए नैज़ा-ओ-सिनाँ पर
वो शबनमे-नोके-ख़ार चेहरे
चुपके-चुपके सुलग रहे हैं
आतशकदः ए-बहार चेहरे
शो'लों के मिज़ाज-आशना हैं
बर्फ़ाब-से बेशरार चेहरे
उम्मीद की शम्अ से फ़ुरोज़ाँ
शाइस्तः ए-इन्तिज़ार[1] चेहरे

1. प्रतीक्षा के योग्य।

करबला

(एक रजज़)

फिर अलअतश की है सदा
जैसे रजज़[1] का ज़मज़मा
फिर रेगे-सहरा पर रवाँ
है अहले-दिल का कारवाँ
नहरे-फ़ुरात आतश-ब-ज़ाँ
रावि-ओ-गंगा ख़ूँचिकाँ
कोई यज़ीद[2]-ए-वक़्त हो
या शिम्र हो या हुरमुला
उसको ख़बर हो या न हो
रोज़े-हिसाब आने को है
नज़्दीक है रोज़े-जज़ा
ऐ करबला ऐ करबला

2

गूँगी नहीं है ये ज़मीं
गूँगा नहीं ये आस्माँ
गूँगे नहीं हर्फ़ो-बयाँ
गूँगी अगर है मस्लिहत
ज़ख़्मों को मिलती है ज़बाँ
वो ख़ूँ जो रिज़्क़-ख़ाक़ था
ताबिन्दा है पाइन्दा है
सदियों की सफ़्फ़ाकी सही
इन्सान अब भी ज़िन्दा है
हर ज़र्रःए-पामाल[3] में

---

1. युद्धक्षेत्र में कुल की वीरता और श्रेष्ठता का वर्णन, 2. एक पतित और अत्याचारी शासक, जिसने हज़रत इमाम हुसैन को शहीद कराया था, 3. पैरों के नीचे कुचले हुए कण।

दिल के धड़कने की सदा
ऐ करबला ऐ करबला

3

अर्शे-रुऊनत के ख़ुदा
अर्ज़े-सितम के देवता
ये टीन और लोहे के बुत
ये सीमो-ज़र के किब्रिया[1]
बारूद है जिन की कबा[2]
रॉकेट की लय जिन की सदा
तूफ़ाने-ग़म से बेख़बर
ये क़समवादो-कमहुनर[3]
निकले हैं ले के अस्लिहा
लेकिन जल उट्ठी ज़ेरे-पा
रेगे-नवाहे-क़ाज़िमा
रेगे-नवाहे-नैनवा
आँधी है मश्रिक़ की हवा
शो'ला फ़लसतीं की फ़ज़ा
ऐ करबला ऐ करबला

4

ये मदरसे दानिशकदे[4]
इल्मो-हुनर के मयकदे
इनमें कहाँ से आ गये
ये कर्गसों के घोंसले
येह जह्ल की परछाइयाँ
लेती हुई अँगड़ाइयाँ
दानिशवराने-बेयक़ीं
ग़ैरों के दफ़तर के अमीं
अल्फ़ाज़ के ख़्वाज़ासरा[5]

---

1. ईश्वर, 2. चोगा, गाउन, 3. प्रतिभाहीन और निर्गुण, 4. विद्यालय, 5. सेवक।

इनके तसर्रुफ़[1] में नहीं
ख़ूने-बहारे-ज़िन्दगी
इनके तर्सरुफ़ में नहीं
ख़ूने-हयाते-ज़ाविदाँ[2]
बर्हम है इनसे रंगे-गुल
आज़ुर्दा है बादे-सबा
ऐ करबला ऐ करबला

5

लेकिन यही दानिश क़दे
हैं इश्क़ के आतशक़दे[3]
हैं हुस्न के ताबिश क़दे[4]
पलते हैं जिनकी गोद में
लेकर अनोखा बाँकपन
अस्रे-रवाँ के कोहकन
मेरे ज़वानाने-चमन
बुलबुल-नवा, शाहीं अदा
ऐ करबला ऐ करबला

6

ऐ ग़म के फ़र्ज़न्दो उठो
ऐ आरज़ूमन्दो उठो
ज़ुल्फ़ों की गलियों में रवाँ
दिल की नसीमे-ज़ाँफ़िज़ा
होंटों की कलियों में ज़वाँ
बूए-गुल-ओ-बूए-वफ़ा
आँखों में तारों की चमक
माथों पे सूरज की दमक
दिल में जमाले-शामे-ग़म
रुख़ पर जलाले-बेनवा
गूँजी हुई ज़ेरे-क़दम

---

1. स्वामित्व, 2. शाश्वत जीवन, 3. आग का घर, 4. ज्योतिगृह।

तारीख़ की आवाज़े-पा
शमशीर हैं दस्ते-दुआ
ऐ करबला ऐ करबला

7

प्यासों के आगे आएँगे
आएँगे लाये जाएँगे
आसूदगाने-जामे-जम
सब साहिबाने-बेकरम
खुल जाएगा सारा भरम
झुक जाएँगे तेग़ो-अलम[1]
पेशे-सफ़ीराने-क़लम[2]
रख़्शन्दा[3] है रूहे-हरम
ताबिन्दा है रूए-सनम
सरदार के शे'रों में है
ख़ूने-शहीदाँ की ज़िया[4]
ऐ करबला ऐ करबला

---

1. तलवार और पताकाएँ, 2. लेखनी के दूत, 3. हर्षित, 4. आलोक।

ऐ शहसवारो!

फैला हुआ है दश्त-ए-जिगरताब
प्यासे हैं चश्मे प्यासे हैं गिर्दाब
कुछ और होंगे जीने के आदाब
ख़ूने-जिगर ही अब है मए-नाब
ऐ शहसवारो
ऐ शहसवारो
उठते बगूले, इफ़्रीत पैकर
सूरज की किरनें, सफ़्फ़ाक ख़ंजर
गिरते हैं कटकर, शाहीं के शहपर
शौक़े-सफ़र ही अपना है रहबर
ऐ शहसवारो
ऐ शहसवारो
वादी-ब-वादी, मंज़िल-ब-मंज़िल
सहरा-ब-सहरा, साहिल-ब-साहिल
क़ातिल ही क़ातिल, क़ातिल ही क़ातिल
दिल-सा सिपाही, सबके मुक़ाबिल
ऐ शहसवारो
ऐ शहसवारो
आयी कहाँ से बूए-बहाराँ
जादू भरी है सौत[1]-ए-हज़ाराँ
शायद यहीं है शहरे-निगाराँ
कुछ और हिम्मत ऐ ज़ौक़े-याराँ
ऐ शहसवारो
ऐ शहसवारो
जाना है आगे हद्दे-नज़र तक
अज़्मे-सफ़र से ख़त्मे-सफ़र तक
मौज़े-बला से मौज़े-गुहर तक
ख़ुश्की-ए-लब से दामाने-तर तक
ऐ शहसवारो
ऐ शहसवारो

---

1. चाबुक।

अलूअतश

अलूअतश[1], अलूअतश, अलूअतश
हमनफ़स[2] गर्म लू, हमक़दम ख़ारो ख़स[3]
ज़ेर-ए-पा बिज़लियाँ, आँधियाँ पेश-ओ-पस
सारबाँ[4] और कुछ तेज़ बाँगे-ज़रस[5]
अलूअतश
अलूअतश
अलूअतश

रहगुज़र, रहगुज़र, क़ारवाँ, क़ारवाँ
प्यास की सरज़मीं, प्यास का आसमाँ
ख़्वाब-दर-ख़्वाब रक़साँ है जूए-रवाँ
सारबाँ और कुछ तेज़ बाँगे-ज़रस
अलूअतश
अलूअतश
अलूअतश

महमिलों में ये सब बे-रिदा कौन हैं
पा-ब-ज़ंज़ीर ये बे-नवा कौन हैं
ये शहीदाने-राहे-वफ़ा कौन हैं
सारबाँ और कुछ तेज़ बाँगे-जरस
अलूअतश
अलूअतश
अलूअतश

---

1. हाय पानी, हाय प्यास, 2. मित्र, 3. काँटे और सूखी घास, 4. ऊँटवाला, 5. उस घण्टे की आवाज़ जो क़ाफ़िले के साथ होता है।

ख़ून से सुर्ख़ सूरज हैं नैज़ों पे सर
सुर्ख़ हैं शहूरे-मज़लूम के बामो-दर
शबं के सीने में ख़ंजर है रंगे-सहर
सारबाँ और कुछ तेज़ बाँगे-जरस
अलूअतश
अलूअतश
अलूअतश

हक़्क़ो-बातिल[1] की हर अहूद में जंग है
हर ज़माना शहादत से गुलरंग है
हर रजज़[2] शो'लः-ए-नूरो-आहंग[3]
सारबाँ और कुछ तेज़ बाँगे-जरस
अलूअतश
अलूअतश
अलूअतश

---

1. सत्य और मिथ्या, 2. युद्धक्षेत्र में अपने कुल की शूरता और श्रेष्ठता का वर्णन, 3. प्रकाश और संगीत की अग्निज्वाला।

शो'लः-ए-ख़ुर्शीद-ए-महशर

अकीदे बुझ रहे हैं शम्ए-जाँ गुल होती जाती है
मगर जौके-जुनूँ की शो'ला-सामानी नहीं जाती

ख़ुदा मालूम किस-किस के लहू की लालःकारी है
ज़मीने-कूए-ज़ानाँ आज पहचानी नहीं जाती

अगर यूँ है तो क्यों है, यूँ नहीं तो क्यों नहीं आख़िर
यकीं मुह्कम[1] है, लेकिन दिल की हैरानी नहीं जाती

लहू जितना था सारा सर्फ़े-मक़्तल हो गया, लेकिन
शहीदाने-वफ़ा के रुख़ के ताबानी नहीं जाती

परीशाँ रोज़गार आशुफ्ताहालाँ का मुक़द्दर है
कि इस ज़ुल्फ़े-परीशाँ की परीशानी नहीं जाती

हर इक शय और महँगी और महँगी होती जाती है
बस इक ख़ूने-बशर है जिसकी अर्ज़ानी[2] नहीं जाती

नये ख़्वाबों के दिल में शो'लः-ए-ख़ुर्शीदे-महशर[3] है
ज़मीरे-हज़रते-इन्साँ की सुल्तानी नहीं जाती

लगाते हैं लबों पर मुहर अर्बाबे-ज़बाँ बन्दी[4]
'अली सरदार' की शाने-ग़ज़लख़्वानी नहीं जाती

---

1. दृढ़ विश्वास, 2. सस्तापन, 3. महाप्रलय के दिन के सूर्य की अग्निज्वाला, 4. बोलने की मनाही करनेवाले।

पस-ए-दीवार-ए-ज़िन्दाँ

पस-ए-दीवार-ए-ज़िन्दाँ क्या है
आँसू हैं कि तारे हैं
बुझी मग़मूम[1] आँखें हैं
कि अंगारे दहकते हैं
तमन्नाओं का सैले-नग़्मा है
या जोशे-गिर्यः है
मुहाफ़िज़ कुछ नहीं कहते
मगर ज़ंज़ीर की आवाज़ यह मुज़्दा सुनाती है
कि हल्के टूट जाएँगे
ब-फ़ैज़े-इश्क़ सब आवारा मैकश लौट आएँगे
अगरचे जामो-साक़ी क़ैद हैं
और मुहतसिब तख़्ते-अदालत पर
रियाकारों[2] के हल्क़े में
सियहकारों के पहरे में
मगर कब तक
कि ज़ंज़ीरों की झनकारों का नग़्मा बढ़ता जाता है
कि ज़िन्दानों की दीवारों का क़ामत[3] घटता जाता है
सलीबों पर सही
पैगम्बरों की हुक्मरानी है

---

1. ग़म में डूबी हुई, 2. पाखण्डी, 3. ऊँचाई।

चार शे'र

जब से इन्सान की अज़्मत[1] पे ज़वाल[2] आया है
है हर इक बुत को ये दा'वा कि ख़ुदा है जैसे

एक आवाज़-सी है वक़्त के सन्नाटे में
दिले-गेती[3] के धड़कने की सदा[4] हो जैसे

है उफ़ुक़-ता-ब-उफ़ुक़[5] ख़ूने-शहीदाँ[6] की शफ़क़[7]
किसी शो'ले के लपकने की अदा हो जैसे

दिल को इस तरह से छूती है किसी हुस्न की याद
आरिज़े-गुल[8] पे लबे-बादे-सबा[9] हो जैसे

---

1. महानता, 2. पतन, 3. संसार का दिल, 4. आवाज़, 5. क्षितिज से क्षितिज तक, 6. शहीदों का ख़ून, 7. लालिमा, 8. फूल का कपोल, 9. पुरवा हवा के होंठ।

हवस-ए-दिल

'हवस को है निशाते-कार क्या-क्या'
—ग़ालिब

हवस-ए-दिल है कि रक़्से-महो-साल और अभी
लुत्फ़े-माशूक़ः-ए-ख़ुर्शीदे-जमाल और अभी

दर अभी बन्द न हो शौक़ के मयख़ाने का
जामे-जम[1] और अभी जामे-सिफ़ाल[2] और अभी

इक ग़ज़ल और किसी दुश्मने-जाँ की ख़ातिर
वही आतशकदः-ए-हिज्रो-विसाल और अभी

बस निखरने ही को है दर्द के शो'ले का जमाल
चश्मे-मज़्लूम में थोड़ा-सा जलाल और अभी

---

1. ईरान के एक वैभवशाली शासक का प्याला, 2. मिट्टी का प्याला।

दो शे'र

ये कौन आया शबे-वस्ल का जमाल लिये
तमाम उम्रे-गुज़श्ता[1] के माहो-साल लिये

हज़ार रंगे-ख़िज़ाँ[2] का बदन पे पैराहन
ज़वाले-हुस्न[3] में भी हुस्ने-लाज़वाल लिये

---

1. बीती हुई उम्र, 2. पतझड़ का रंग, 3. सौन्दर्य का ह्रास।

नयी नस्ल के नाम

मुझसे नज़रें चुरा कर कहाँ जाओगे
ऐ मिरे आफ़ताबो
राह में रात की बेकराँ झील है
और ऊँची हैं लहरें
आसमाने सुख़न के नये माहताबो
तीरगी[1] ढूँढ़ती फिर रही है तुम्हारा पता
और वो सिर्फ़ मैं जानता हूँ
दर्द की शाहरह से गुज़र कर
आँसुओं की नदी के किनारे
ग़म की बस्ती में जो नूर का झोंपड़ा है
उसमें रहते हो तुम
मेरी ही तरह खानः-ख़राबो
साज़िशे कर्गसों की तरह उड़ रही हैं
उनके पर थक के गिर जाएँगे
और तुम्हारी बलन्दी न छू पाएँगे
तुम इसी तरह परवाज़ करते रहोगे
और तुम्हारे परों की चमक
कहकशाँ, कहकशाँ, गीत गाती रहेगी
ऐ मिरे शोलः-पैकर उक़ाबो

अपने लौहो-क़लम तो दिखाओ ज़रा
सच कहो, क्या तुम्हारे तराशे हुए लफ़्ज़ में
मेरी आवाज़ का शाइबः[2] भी नहीं
मेरी आवाज़ जो पहले ग़ालिब की आवाज़ थी
और फिर रूहे-इक़बाल का ज़मज़मः[3] बन गयी
आज के नग़्मः-ए-शौक़ में ढल गयी

---

1. अन्धकार, 2. मिश्रण, मिलावट, 3. संगीत, लय।

सुब्हे-फ़र्दा[1] की वादी में जूए-रवाँ है
मेरी आवाज़
पत्थर में शो'लः है
शो'ले में शबनम
और तूफ़ाँ में तूफ़ाँ
और तुम्हारे भी सीने में उसकी चुभन है
सच कहो
आने वाले ज़माने की रौशन किताबो

मुझसे नज़रें चुराकर कहाँ जाओगे?

---

1. आने वाले कल की सुबह।

ग़ज़ल

कोई हो मौसम थम नहीं सकता रक़्से-जुनूँ दीवानों का
ज़ंज़ीरों की झनकारों में शोरे-बहाराँ बाक़ी है

इश्क़ के मुज्रिम ने ये मंज़र औजे़-दार से देखा है
ज़िन्दाँ-ज़िन्दाँ[1], महबस-महबस[2], हल्क़ःए-याराँ बाक़ी है

बर्गे-ज़र्द के साये में भी जूए-तरन्नुम जारी है
ये तो शिकस्ते-फ़स्ले-ख़िज़ाँ है, सौते-हज़ाराँ बाक़ी है

मुह्तसिबों[3] की ख़ुश्क़ी-ए-दिल पर एक ज़माना हँसता है
तरह है दामन और वक़ारे-बादा-गुसाराँ[4] बाक़ी है

फूल-से चेहरे, चाँद-से मुखड़े नज़रों से रूपोश हुए
आरिज़े-दिल पर रंगे-हिना है, दस्ते-निगाराँ बाक़ी है

---

1. कारागार, 2. इस शब्द का प्रयोग 'ज़िन्दाँ' के अर्थ में ही किया गया है, 3. धर्माधिकारी,
4. मदिरापान करने वालों की गरिमा।

राज निराज

(ये अशआर मुम्बई के फ़सादात के ज़माने में लिखे गये)

सुना है बन्दोबस्त अब सब ब-अन्दाज़े-दिगर होंगे
सितम होगा, मुहाफ़िज़े-शहर[1] बेदीवारो-दर होंगे

सज़ाएँ बेगुनाहों को मिलेंगी बेगुनाही की
कि फ़र्दे-जुर्म[2] से मुजिम की मुंसिफ़ बेख़बर होंगे

फ़क़त मुख़बिर शहादत देंगे ऐवाने-अदालत में
फ़क़त तीरो-सिनाँ, शमशीरो-ख़ंजर मोतबर होंगे

सज़ाई जाएगी बज़्मे-अज़ा ईज़ा-रसानों से
कफ़न पहनाएँगे जल्लाद, क़ातिल नौहःगर होंगे

फ़लक थर्रा उठेगा झूटे मातम की सदाओं से
यतीमों और बेवाओं के आँसू बेअसर होंगे

रसन में माँओं और बहनों के बाज़ू बाँधे जाएँगे
शहीदाने-वफ़ा के ख़ूँ भरे नैज़ों पे सर होंगे

मनाया जाएगा जश्ने-मसर्रत सूने खँडरों में
अँधेरी रात में रौशन चिराग़े-चश्मे-तर होंगे

जो ये ताबीर होगी हिन्द के देरीना[3] ख़्वाबों की
तो फिर हिन्दोस्ताँ होगा न इसके दीदःवर होंगे

---

1. शहर के रखवाले, 2. अपराधों की सूची, 3. पुराने।

एक शे'र

आस्तीं ख़ून में तर प्यार जताते हो मगर
क्या ग़ज़ब करते हो ख़ंजर तो छुपाओ साहब

ग़ज़ल

('आतश' की ज़मीन में)

कभी ख़न्दाँ[1], कभी गिरियाँ[2], कभी रक़्साँ चलिए
दूर तक साथ तिरे, उम्रे-गुरेज़ाँ, चलिए

ज़ौक़े-आराइशो-गुलकारिए-अश्के-ख़ूँ से
कोई भी फ़स्ल हो, फ़िरदौस-ब-दामाँ चलिए

रस्मे-देरीनः-ए-आलम[4] को बदलने के लिए
रस्मे-देरीनः-ए-आलम से गुरेज़ाँ चलिए

आस्मानों से बरसता है अँधेरा कैसा
अपनी पल्कों पे लिये जश्ने-चराग़ाँ चलिए

शोलः-ए-जाँ को हवा देती है खुद बादे-समूम
शोलः-ए-जाँ की तरह चाक-गिरीबाँ चलिए

अक़्ल के नूर से दिल कीजिए अपना रौशन
दिल की राहों से सूए-मंज़िले-इन्साँ[5] चलिए

गम नयी सुब्ह के तारे का बहुत है लेकिन
लेके अब परचमे-ख़ुर्शीदे ज़र-अफ़शाँ चलिए

सर-ब-कफ़ चलने की आदत में न फ़र्क़ आजाए
कूचः-ए-दार में सरमस्तो-ग़ज़लख़्वाँ चलिए

---

1. प्रसन्न, 2. उदास, 3. ख़ून के आँसुओं की सजावट का शौक, 4. संसार की पुरानी प्रथा, 5. इन्सान की मंज़िल की तरफ़।

ग़ज़ल

लू के मौसम में बहारों की हवा माँगते हैं
हम कफ़े-दस्ते-ख़िज़ाँ पर भी हिना माँगते हैं

हमनशीं सादादिली-हाए-तमन्ना[1] मत पूछ
बेवफ़ाओं से वफ़ाओं का सिला माँगते हैं

काश कर लेते कभी का'बः-ए-दिल का भी तवाफ़
वो जो पत्थर के मकानों से ख़ुदा माँगते हैं

जिसमें हो सत्वते-शाहीन की पर्वाज़ का रंग
लबे-शाइर से वो बुलबुल की नवा माँगते हैं

ताकि दुनिया पे खुले उनका फ़रेबे-इंसाफ़
बेख़ता होके ख़ताओं की सज़ा माँगते हैं

तीरगी जितनी बढ़े हुस्न हो अफ़ज़ूँ तेरा
कहकशाँ माँग में, माथे पे ज़िया माँगते हैं

यह है वारफ्तगिए-शौक़[2] का आलम 'सरदार'
बारिशे-संग[3] है और बादे-सबा माँगते हैं

---

1. इच्छा की सरलताएँ, 2. प्रेम की बेसुधी, 3. पत्थरों की बारिश।

शहर-ए-याराँ[1]

(भोपाल में गैस के क़ातिल हादिसे के बाद)

"शहर-ए-याराँ बूद-ओ-ख़ाके-मेहरबानाँ ईन दयार
मेहरबानी कय सरआमद, शहरे-याराँ रा चे शुद"
—हाफ़िज़ शीराज़ी

सारे शहरों में जहाँ के शहरे-याराँ था ये शहर
कूचः-ए-दिलदारो-कूए-दिलफ़िगाराँ था ये शहर

शाम, शामे-न्ग़्मःओ-मय, शब, ग़ज़लख़्वानी की शब
बूस्ताने-बुलबुलो-सौते-हज़ाराँ[2] था ये शहर

हुस्न में परवर्दिगारे-गेसूए-अंबर-फ़िशाँ
दिलबरी में ज़ादूए-चश्मे-निगाराँ था ये शहर

नागहाँ बरसा कहीं से एक अब्रे-ज़हर-बार
याँ से वाँ तक इक हुजूमे-बेक़राराँ था ये शहर

पल के पल में बामो-दर सब हो चुके थे सोगवार
क़ब्रे-तीरा-बख़्त-ओ-तीरा रोज़गाराँ[3] था ये शहर

आज मँडराता है जिसके सर पे दोज़ख़ का धुआँ
रहगुज़ारे-अब्र-ओ-बर्क़-ओ-बाद-ओ-बाराँ था ये शहर

है सवा नेज़े पे जैसे आज कहरे-आफ्ताब
सायः-ए-बर्ग-ओ-बहारे-शाख़साराँ था ये शहर

---

1. दोस्तों का शहर था और यार के देश की मिट्टी मेहरबान थी। मेहरबानी कब ख़त्म हो गयी और यारों के शहर को क्या हो गया, 2. हज़ारों बुलबुलों की आवाज़ों से गूँजता हुआ उपवन, 3. दुर्भाग्य और दरिद्रता की समाधि।

जिस पे नाज़िल हो रहा है अब मशीनों का अज़ाब
नग़्मः-ए-शाइस्तगिए-दस्तकाराँ था ये शहर

ख़ाके-दिल उड़ती है अब जिस तरह पर्वानों की ख़ाक
सुब्हे-गुल, रोज़े-तरब, शामे-बहाराँ था यह शहर

कौन है फ़रियादरस, माँगेंगे किससे ख़ूँबहा[1]
ज़ेरे-पाए-नख़्वते-आदम-शिकाराँ था ये शहर

तौक़े-ज़रीं[2] गर्दने-ख़र में नज़र आता है आज
कल तलक जौलाँगहे-चाबुक-सवाराँ[3] था ये शहर

---

1. मृत्यु के बदले लिया जाने वाला मूल्य, 2. सोने से जड़ा हुआ तौक़ (क़ैदी के गले में पहनाई जाने वाली लोहे की हँसली), 3. तेज़ रफ़्तार घोड़ों पर सवारी करने वाला।

एक शे'र

खुदा हसीनो-जमील है और तुम्हारी आँखों में जलवागर है
वह मौजे-रंगे-बहार, तुम जिस से गुलफ़िशाँ[1] हो मिरी नज़र है

1. पुष्पित-पल्लवित।

एक शे'र

मुसहफ़े-रुख़[1] पे जो ज़ुल्फ़ों ने लिखा बिस्मिल्लाह
आयी ज़ंज़ीर के हल्क़ों की सदा, बिस्मिल्लाह

1. चेहरे की किताब।

एक नज़्म

जो आसमाँ पे चमकता है वो क़मर है कुछ और
जिसे हम अपना कहें वो क़मर ज़मीं पे है
वो जिसके हुस्न से रौशन जबीं सितारों की
वो जिसके हुस्न से रंगीनियाँ बहारों की
वो हुस्न फूल में, ज़र्रे में, आफ़ताब[1] में है
वो हुस्न हर्फ़ में, नग़्मे में है, किताब में है
वो हुस्न शोले में, शबनम में है, शराब में है
वो हुस्न जिससे है तस्वीरे-काइनात[2] में रंग

---

1. सूरज, 2. ब्रह्माण्डरूपी चित्र।

समन्दर की बेटी

'हमें हुस्न का मे'यार बदलना है।'
—प्रेमचन्द

जब वह बोझ उठाती है
और टोकरी सर पर रखती है
दो हाथों की कौसे-कुज़ह[1] में
उसकी गर्दन और भी ऊँची हो जाती है
इक तलवार-सी खिंच जाती है
यह गर्दन जो कभी नहीं झुक पाती है
(हाँ शर्माकर झुक जाने की बात अलग है)
यह गर्दन
जो जिस्म के ऊपर
चेहरे के गुलदस्ते को
और होंटों के बर्गे-गुल को
आरास्ता करना जानती है
जैसे कोई दस्ते-हिनाई
नाज़ो-अदा से इश्क़ो-जुनूँ को
हुस्न का तुहफ़ः पेश करे

दरियाओं की सिमटी चाँदनी
सोने जैसी धूप में जगमग, जगमग करती
सड़कों और गलियों से ऐसे गुज़रती है
जैसे कोई मग़रूर जवानी
अपने बदन पर, अपने बदन की किरनों का पैराहन पहने
बहक रही हो
उसकी चाल में फ़ितरी लोच हवाओं का
पानी की लहरों की रवानी
उसका सीनः बोझ के नीचे

1. लाल, पीले और हरे रंग का इन्द्रधनुष।

और उभरकर
चाँद और सूरज पर हँसता है
उसकी भौओं की शोख़ कमानें
तन जाती हैं
कूल्हे और कमर की जुम्बिश
रानों से पैरों के तलवों तक बल खाती चली जाती है
उसमें है रफ़्तारे-ज़माना की बेबाकी
जो सदियों से ताजो-तख़्त को ठुकराती
और महलों को क़ब्रों में सुलाती
रवाँ दवाँ है

ऊँची एड़ी
हिरनखुरी की जूतियाँ पहने
उचक-उचक कर चलनेवाली दोशीजाएँ
घबरा कर पीछे हट जाती हैं
और मछेरन अपनी चाँदी, अपना सोना
सर पे उठाये
आगे बढ़ जाती है
उसके बालों और बालों में सजे हुए फूलों की खुशबू
चारों सिम्त बिखर जाती है
दूर से एक आवाज़ आती है
मछली ले लो
मछली ले लो

रोज़ सहर को
नीले साहिल की यह नीलम-पैकर[1] बेटी
रंगे-शफ़क़[2] से ज़ाहिर होकर
शाम तलक
फिर रंगे-शफ़क़ के पर्दे में छुप जाती है
और समन्दर गीत सुनाता रहता है
मैंने अजन्ता की आँखों में
उसको फ़ुरोज़ाँ देखा है

---

1. नीलम-सी देह वाली, 2. उषाकाल की लालिमा।

दो शे'र

तसव्वुर अपना, अपनी आरज़ू, शौक़े-फ़ुज़ूल अपना
लब उसके, आरिज़ उसके, नक्हते-ज़ुल्फ़े-दराज़[1] उसकी

ख़मोशी एक गुबाँगे-बहारे-आशिक़ाना है
तबस्सुम[2] उसकी ग़ज़लें, रूए-रौशन है बयाज़ उसकी

1. लम्बे केशों की सुगन्ध, 2. स्मिति, मुस्कान।

दौलत-ए-दुनिया का हिसाब

तुम कि हो मुहतसिबे-सीमो-ज़रो-लालः-ओ-गुहर[1]
हमसे क्या माँगते हो दौलत-ए-दुनिया का हिसाब
चन्द तस्वीरे-बुताँ चन्द हसीनों के ख़ुतूत
चन्द नाकर्दा गुनाहों के सुलगते हुए ख़्वाब

हाँ मगर अपनी फ़क़ीरी में गनी हैं हम लोग
दौलते-दर्दे-दिलो-दर्दे-जिगर रखते हैं
ख़ुश्किए-लब है तो क्या, दीदःए-तर रखते हैं
अपने क़ब्ज़े में नहीं अतलस-ओ-संजाब-ओ-सुमूर[2]
जिस्म पर पैरहने-शम्सो-क़मर रखते हैं
घर तो रौशन नहीं अल्मास के फ़ानूसों से
कस्र-ओ-ऐवाँ[3] पे जो बरसे वो शरर रखते हैं
जो ज़माने को बदल दे वो नज़र रखते हैं

इस ख़ज़ाने में से जो चाहो उठा ले जाओ
और बढ़ जाता है यह माल जो कम होता है
हम पे तो रोज़ ज़माने का करम होता है
शाख़े-गुल बनता है जब हाथ क़लम होता है।

---

1. हीरे-मोती और सोने-चाँदी का हिसाब रखने वाले, 2. मूल्यवान वस्त्र, 3. महल और प्रासाद।

रक़्स-ए-ख़िज़ाँ[1]

ख़िज़ाँ-रसीदा निगारे-बहार रक़्स में है
अज़ीब आलमे-बेएतिवार रक़्स में है

बरस रहे हैं दरख़्तों से रंग, सूरते-बर्ग
तिलिस्म-ख़ानः-ए-लैलो-नहार रक़्स में है

गुज़र रहा है ज़माना बहार है न ख़िज़ाँ
बस इक तबस्सुमे-बर्क़ो-शरार रक़्स में है

न जाने कौन है माशूक़ कौन है आशिक़
न जाने किसका दिले-बेक़रार रक़्स में है

जुनूँ ने पैरहने-बर्गो-बार उतार दिया
बरह्नगी है कि दीवानावार रक़्स में है

यह काइनात का हैरतकदा[2] वुजूद का राज़
अज़ल[3] के रोज़ से बे-इख़्तियार रक़्स में है

---

1. पतझड़ का नृत्य, 2. आश्चर्यलोक, 3. आदि, सृष्टि का आरम्भ।

करिश्मा

मिरे लहू में जो तौरैत[1] का तरन्नुम है
मिरी रगों में जो यह ज़मज़मः ज़ुबूर[2] का है
यह सब यहूदो-नसारा के ख़ूँ की लहरें हैं
मचल रही हैं, जो मेरे लहू की गंगा में

मैं साँस लेता हूँ जिन फेफड़ों की ज़ुम्बिश से
किसी मुगन्नि-ए-आतश-नफ़स[3] ने बख़्शे हैं
ज़वाँ है मुसहफ़े-यज़दाँ का लह्ने-दाऊदी

किसी की नर्गिसी आँखों का नर्गिसी पर्दा
मिरी नज़र को अता कर रहा है बीनाई
निगाहे-शौक़ की हैं बेकरारियाँ क्या-क्या
तुलूए-मिह्र की हैं नक़्शकारियाँ क्या-क्या
महो-नुजूम की हैं ज़ल्वः-बारियाँ क्या-क्या
ज़मीं से ता-ब-फ़लक रक़्स में हैं लैलाएँ
शिगुफ़्ता सूरते-गुल, हर तरफ़ तमन्नाएँ

ख़ुदा का शुक्र अदा जब ज़बान करती है
तो दिल तड़पता है इक ऐसी क़ाफ़िरा के लिए
ख़ुदा भी मेरी तरह, जिस को प्यार करता है
वो जिस्मे-नाज़, युहिब्बुल-ज़माल का नग़्मा
वो सर से पाँव तलक माहो-साल का नग़्मा
जलाले-हिज्रो-शिकोहे-विसाल का नग़्मा
जहाने-इश्क़ में, तफ़रीके-इस्मो-ज़ात[4] नहीं
जहाने-हुस्न में तक़सीमे-हिन्द-ओ-पाक नहीं
सिवा गुलों के गिरीबाँ किसी का चाक नहीं

---

1. हज़रत मूसा पर नाज़िल होने वाली आस्मानी किताब, 2. हज़रत दाऊद पर नाज़िल होने वाली आस्मानी किताब, 3. अग्निवत् स्वरों वाला गायक, 4. नस्ल व जात-पाँत का भेदभाव।

यह आलमे-बशरी, एहतिराम का आलम
तमामतर है दुरूद-ओ-सलाम का आलम
नफ़स-नफ़स में मिरे ज़मज़मः महब्बत का
मिरा वुजूद, क़सीदा बशर[1] की अज़्मत का
ये सब करिश्मा है, इन्सानियत की वहदत[2] का

1. मनुष्य, 2. एकत्व।

परवीन शाकिर

वह विद्यापति की शाइरी की
मासूम-ओ-हसीन-ओ-शोख़ राधा
वह अपने ख़याल का कन्हैया
उस शहर में ढूँढ़ने गयी थी
दस्तूर था जिसका संगबारी

वह फ़ैज़-ओ-फ़िराक़ से ज़ियादः
तक़दीसे-बदन की नगमः-ख़्वाँ थी
तहज़ीबे-बदन की राज़दाँ थी
गुलनार लबों की तहनीयत में
गुलनार लबों से गुलफ़िशाँ थी
लब-आशना लब ग़ज़ल के मिसरे
ज़िस्म-आशना ज़िस्म नज़्म-पैकर
लफ़ज़ों की हथेलियाँ हिनाई
तश्बीहों की उँगलियाँ गुलाबी
सरसब्ज़ ख़याल का गुलिस्ताँ
मुब्हम[1]-से कुछ आँसुओं के चश्मे
आहों की वो हलकी-सी हवाएँ
सदबर्ग हवा में मुन्तशिर[2] थे
तितली थी कि रक़्स कर रही थी
और दर्द के बादलों से छन कर
नग्मों की फ़ुवार पड़ रही थी
पुरशोर मुनाफ़िक़त[3] के बाज़ार
अफ़वाहें फ़रोख़्त कर रहे थे

वह अपनी शिकस्ता शख़्सीयत को
अशआर की चादरों के अन्दर

---

1. छुपे हुए, सूक्ष्म, 2. बिखरे हुए, 3. लाभ कमाना।

इस तरह समेटने लगी थी
एहसास में आ रही थी बुस्अत
नज़रों का उफ़क़ बदल रहा था
और दर्दे-जहाने-आदमीयत
टूटे हुए दिल में ढल रहा था

उस आलमे-कैफ़ो-कम में इक दिन
इक हादिसे का शिकार होकर
जब ख़ूँ का कफ़न पहन लिया तो
अड़तीस सलीबें नौहःख़्वाँ[1] थीं
ख़ामोश था कर्बे-ख़ुदकलामी
अब कुछ नहीं रह गया है बाक़ी
बाक़ी है सुख़न की दिलनवाज़ी

जन्नत में है जश्ने-नौ का सामाँ
महफ़िल में मजाज़-ओ-बायरन हैं
मौज़ूद हैं कीट्स और शैली
ये मर्गे-जवाँ के सारे आशिक़
ख़ुश हैं कि ज़मीने-पाक से इक
नौमर्ग[2] बहार आ गयी है
लिपटी हुई ख़ाक की है ख़ुशबू
और सायःफ़िगन[3] सहाबे-रहमत[4]

---

1. मातम करने वाली, 2. जिसकी युवावस्था में मृत्यु हुई हो, 3. छाया करने वाले, 4. कृपा के बादल।

सिफ़ारतख़ानः ए-जाँ

(एक नज़्म हज़ार साल पुरानी)

हमारे शहरे-दिल में इक सिफ़ारतख़ानः ए-जाँ[1] है
सिफ़ारत जिस का पर्चम दिलजलों की आहे-सोज़ाँ है
बस इक दस्तूरे-इश्क़ो-आशिक़ी जो मीरे-सामाँ है
यहाँ आने का रस्ता कूचः-ए-चाक-गिरीबाँ है
यहाँ है रौशनी तन्हा चिराग़े-चश्मे-पुरनम की
यहाँ आओ तो खुल जाएँगी राहें सारे आलम की

यहाँ कश्मीर भी, ढाका भी है, काशी भी, का'बः भी
ज़मीं का हुस्न भी और जल्वः-ए-अर्शे-मुअल्ला भी
यहाँ झेलम भी है, दज़ला भी है, डेन्यूब-ओ-गंगा भी
अकब[2] में दूर तक फैला हुआ दश्ते-तमन्ना भी
सरोदे-'मंज़िले-मा-किब्रिया'[3] उसका तराना है
हक़ीक़त है फ़क़त इन्सान, बाक़ी सब फ़साना है

---

1. प्राणों का दूतावास, 2. पीछे, 3. वैभव, शान, खुदा का नाम।

नज़्र-ए-अख़्तर-उल-ईमान

रवाँ है क़श्तिए उम्रे-रवाँ आहिस्ता आहिस्ता
ख़यालो-ख़्वाब होगा ये जहाँ आहिस्ता-आहिस्ता
जो उठता है दिलो-जाँ से धुआँ आहिस्ता-आहिस्ता
बुझी जाती है कोई कहकशाँ[1] आहिस्ता-आहिस्ता

नोट : मर्हूम अख़्तर-उल-ईमान ने अपनी बीमारी के ज़माने में एक नज़्म कही थी, जिसके आख़िरी दो मिस्रे ये थे :

बहे जाती है मेरी कश्तिए-उम्रे-रवाँ आहिस्ता-आहिस्ता
ख़यालो-ख़्वाब होता जा रहा है ये जहाँ आहिस्ता-आहिस्ता

मैंने इनको एक क़त्अः में तब्दील कर दिया।

1. व्योम-गंगा।

तीन शे'र

तेरी दिलबरी का तुह्फ़ः, ये सितारःबार आँखें
मए-शौक़ से छलकती ख़ुशो-पुरख़ुमार आँखें

मिरे दिल पे साया-अफ़गन, मिरी रूहो-जाँ में रौशन
ये फ़रिशतःगीर ज़ुल्फ़ें, ये ख़ुदा-शिकार आँखें

रहे ता-अबद[1] सलामत, ये दिलो-नज़र की जन्नत
ये सदाबहार पैकर, ये सदाबहार आँखें

---

1. सृष्टि के अन्त तक।

अहमद फ़राज़ के नाम

चलो मैं हाथ बढ़ाता हूँ दोस्ती के लिए
—फ़राज़

तुम्हारा हाथ बढ़ा है जो दोस्ती के लिए
मिरे लिए है वो इक यारे-गमगुसार का हाथ
वो हाथ शाखे़-गुले-गुलशने-तमन्ना है
महक रहा है मिरे हाथ में बहार का हाथ

खुदा करे कि सलामत रहें ये हाथ अपने
अता हुए हैं जो ज़ुल्फ़ें सँवारने के लिए
ज़मीं से नक़्श मिटाने को ज़ुल्मो-नफ़रत का
फ़लक से चाँद-सितारे उतारने के लिए

ज़मीने-पाक हमारे जिगर का टुकड़ा है
हमें अज़ीज़ है देहली-ओ-लखनऊ की तरह
तुम्हारे लहजे में मेरी नवा का लहजा है
तुम्हारा दिल है हसीं मेरी आरजू की तरह

करें ये अहृद कि औज़ारे-जंग जितने हैं
उन्हें मिटाना है और ख़ाक में मिलाना है
करें ये अहृद कि अर्बाबे-जंग हैं जितने
उन्हें शराफ़तो-इन्सानियत सिखाना है

जिएँ तमाम हसीनाने ख़ैबरो-लाहौर
जिएँ तमाम जवानाने-जन्नते-कश्मीर
हो लब पे नग्मःए-मेहरो-वफ़ा[1] की ताबानी[2]
किताबे-दिल पे फ़कत हर्फ़े-इश्क़ हो तहरीर

---

1. स्नेह और आत्मीयता के गीत, 2. आभा, तेज।

"तुम जाओ गुलशने-लाहौर से चमन-बर-दोश[1]
हम आएँ सुब्हे-बनारस की रौशनी लेकर
हिमालया की हवाओं की ताज़गी लेकर
और उसके बाद ये पूछें कि कौन दुश्मन है?"

1. वसन्त को साथ लिये हुए।

वेद-ए-मुक़द्दस

शुऊरे-इन्साँ[1] के आफ़ताबे-अज़ीम की अव्वलीं शुआएँ[2]
जो लह्नो-आवाज़ बन गयी हैं
वो अव्वलीं आलमे-तहैयुर[3]
ज़मीन क्या, आस्मान क्या है?
सितारे क्यों जगमगा रहे हैं?
तहैयुर इक नग्मःए-मुसलसल
तहैयुर इक रक़्से-वालिहाना
तहैयुर इक फ़िक्रे-आरिफ़ाना[4]
कोई है ख़ालिक़[5] तो वो कहाँ है?
अगर नहीं है तो फिर ये क्या है?
ये दिल में किस नूर की ज़िया[6] है?
बशर का जल्वा है या ख़ुदा है?

---

1. मनुष्य की चेतना, 2. पहली-पहली किरणें, 3. आश्चर्य की दशा, 4. अध्यात्म चिन्तन, 5. सृष्टिकर्ता, 6. आभा।

चण्डालिका*

ये ख़ाके-पाक[1] जो गौतम के क़दमों से मुनव्वर है
श्रावस्ती की बस्ती है
यहाँ इक सादा-ओ-मासूम दिल
रौशन हुआ था इश्क़ के पाकीज़ा शो'ले से
धुआँ उट्ठा
बदन से ऊद-ओ-अम्बर की महक आयी
वो ख़ुशबू
अब भी आवारा है जंगल की हवाओं में

□□

*मेरे वतन बलरामपुर से चन्द मील के फ़ासले पर श्रावस्ती का क़दीम इलाक़ा है जहाँ गौतम बुद्ध ने बहुत-सी बरसातें गुज़ारीं। चण्डालिका एक अछूत लड़की है जो गौतम बुद्ध के एक शागिर्द आनन्द पर आशिक़ हो गयी थी। यह इश्क़ उसको गौतम बुद्ध के विहार तक ले गया और वह वहीं रह गयी।

1. पवित्र धरती।



भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापना : सन् 1944

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन

स्व. श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष

श्रीमती इन्दु जैन

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003